ISSN : 2321-3922
अप्रैल–2015

संभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.sambhavya.net

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

ISSN - 2321-3922

संभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

अप्रैल–2015

संस्थापक–सह–प्रधान संपादक
श्री दयानन्द जायसवाल

संयोजक
डॉ. विजय कुमार सिंह

संरक्षक
श्री मती प्रतिभा सिन्हा

सम्पादक
डॉ. अश्विनी
डॉ. जी.पी. सिंह

संस्थापक सदस्य
डॉ. राम किशोर शर्मा
श्री उमाकान्त भारती
श्रीमती संयुक्ता गुप्ता

विशिष्ट सदस्य
श्री अजय कुमार सिंह
श्री धनञ्जय प्रसाद मण्डल 'अजित'
श्री सत्यदेवेश प्रसाद
श्री शिवनन्दन प्रसाद सिंह
श्रीमती छाया पाण्डेय

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक : श्री दयानन्द जायसवाल
संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं समस्त
व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक ।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303, 09570838880
वेबसाईट : www.sambhavya.net
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

संभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.sambhavya.net

आमंत्रण

'संभाव्य' अंतराष्ट्रीय स्तर की पूर्णतः निःशुल्क हिंदी त्रैमासिक है। वर्तमान समय में विश्व के 49 देशों के पाठक सहित भारत के 84 शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.sambhavya.net पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन को सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि जुलाई–2015 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रनचाएं अपने पत्राचार के पता के साथ मेल करें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हँटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

रचनाएं भेजें :–
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com

संपादक
संभाव्य हिन्दी त्रैमासिक

चलो तुमने सीखा तो सही
कि क़लम सिर्फ कविता के लिए नहीं
ज़रूरतों के लिये भी उठती है
कि भाव सिर्फ महसूसने को नहीं
छपने को भी उभरते हैं –

प्रशांत! अब तो तुमने
शांत रहना भी सीख लिया है
दोस्तों की चुप्पी को
सहना भी सीख लिया है–

शिकवा करूँ
कि बदल गये हो
या ख़ुश हो लूँ
कि तुम चलना सीख गये हो ।

मोनालिसा मुखर्जी
मुम्बई

ISSN - 2321-3922

अनुक्रम

1	पुरोवाक्	संस्थापक की कलम से	दयानन्द जायसवाल	5
2	आलेख	आनंद शंकर माधवन सुधियों के चंदन वन में	प्रो० : मृत्युंजय उपाध्याय	6
3	गजल	याद आ जाती है...	देव नाथ द्विवेदी	9
4	समीक्षा	अँधेरे से बाहर उम्मीद और रौशनी की कवितायें	विनोद कुमार	10
5	कहानी	भरोसा टूटने का दु:ख	डॉ0 सुजाता चौधरी	13
6	गजल	आपने जो मुझको...	शुभम श्रीवास्तव 'ओम'	15
7	कविता	एक नये व्याकरण की जीत	श्वेता भारती	16
8	कविता	शेर सा मैं भी गरजना जानता हूँ	डॉ0 अश्विनी	16
9	सम्मान सूची	संभाव्य दिवस समारोह–2015	संस्थापक	17
10	कविता	पुरानी डायरी	अनुपमा सरकार	18
11	लघुशोध	हिन्दी की विशिष्ट संबोधन शब्दावली: एक सम्यक् अध्ययन	छोटेलाल गुप्ता	19
12	आलेख	वन तुलसी गंध की तरह.... 'रेणु'	डॉ0 अनुज प्रभात	23
13	समीक्षा	कहानी संग्रह : डॉ० सुजाता	दयानन्द जायसवाल	25
14	आलेख	संयोग या नियति का खेल	डॉ0 आनंद प्रकाश	27
15	आलेख	अंबेडकर के अर्थशास्त्री विचार	डा. शरद रंजन त्यागी	30
16	कविता, कहानी	इंतजार रब का–18, एक सर्द दिन, तुम्हारे बिन (कहानी)	सीमा'असीम'	31
17	कहानी	पहली खेप	डॉ0 प्रेमचन्द पाण्डेय	35
18	कविता	बाल गीत	कृपाशंकर शर्मा 'अचूक'	38
19	कविता	वो तिलचट्टे	आशा पाण्डेय ओझा	39
20	लघुकथा	आओ कहें, दिल की बात	क़ैस जौनपुरी	40
21	कविता	अच्छा लगता है	सच्चिदा नंद 'इंसान'	41
22	कविता	प्रार्थना	उमाकांत झा 'अंशुमाली'	41
23	कविता	केंचुवे और साँप	अखिलेश चन्द्र श्रीवास्तव	42
24	कविता	शब्द	सुरेन्द्र कुमार शर्मा	42
25	कविता	मसूरी – रविशंकर सिंह, कविता और कवि –	सुशील कुमार श्रीवास्तव	43
26	कविता	फ़रिश्ता	विजय कुमार सप्पति	44
27	लघुकथा	मिट्टू, घड़याली आँसू	रीता वर्मा	45
28	लोकवाणी			46

पुरोवाक्

संस्थापक की कलम से

संस्कृति के प्रत्येक घटक मानवीय चेतना के विकास के परिचायक कहे जा सकते हैं। इन घटकों की सम्मिलित अभिव्यक्तियों के आधार पर संस्कृति के स्वरुप एवं स्तर का पता चलता है। साहित्य संस्कृति का उत्कृष्ट घटक भी है और मानवीय चेतना के विकास का उदात्त माध्यम भी। यह सिर्फ जीवन ही नहीं, जीवन को इंकिलाव भी देता है। यह मानवीय मूल्यों की खोज में एक हथियार की तरह काम करता है। यह एक प्रतिवादी, प्रतिरोधी एवं प्रतिबोधी शक्ति भी है, जो जीवन और जगत में व्यक्तियों के इर्द–गिर्द बुने जा रहे षड्यंत्रों को पहचानने और उन्हें उखाड़ फेंकने के सतत् संकल्प में भी जीता है। यह कभी यथास्थितिवाद की बातें नहीं करता, लोक धर्मिता और क्रियावादी बनाता है।

आधुनिक अतीत को वर्तमान से मिलाने के लिए स्वयं सेतु बन जाती है। आधुनिकता और परम्परा में, शाश्वत साहित्य और नये बोध में टकराव की कोई बात नहीं है। आधुनिकता की नदी में स्नान कर परम्परा ताजगी और स्फुर्त्ति प्राप्त करती है। टकराव की स्थिति इसलिए लगती है कि आधुनिक बोध स्वतः विकसित न होकर अधिकतर आयातित है। शाश्वत साहित्य की प्रासंगिकता ढूँढना अतीत में जीना नहीं है। अतीत में हम विश्रांति पाते हैं, जीते नहीं । जीते तो हम वर्तमान में ही हैं। समाज की संरचना, व्यवस्था, उद्धेश्य का कार्य प्रणाली, सामाजिक सभ्यता और रीति–रिवाज में संशोधन होता रहता है। नए आविष्कार, नई प्रगति, शिक्षा, नई समस्याएँ और उससे उत्पन्न नवीन प्रश्न समाज को शिथिल नहीं होने देते। व्यक्ति के जीवन को परिवर्तनशील क्रम में उसका मानसिक और नैतिक चिंतन ही सामाजिक शक्ति का कार्य करने में सक्षम है। व्यक्ति अपने व्यक्तिगत व्यक्तित्व का और समाज उसके सामाजिक व्यक्तित्व का निर्माण करता है।

साहित्य और साहित्कार का इन सबसे उपर प्रमुख उद्धेश्य रहता है; सामाजिक व्यक्तित्व का विकास अर्थात नैतिकता–प्रधान मनुष्य का निर्माण। जब उसकी बौद्धिक चेतना विकसित होगी तो ही उसकी सार्थकता, उपयोगिता और योग्यता अस्तित्व में आ पायेगी।

साहित्य प्रत्येक नये युग में सार्वजनीय–गुण के कारण सहृदय समाज खोज लेता है। इसलिए आधुनिक बोध भी शाश्वत साहित्य के सानिध्य में सार्वजनीनता के तत्त्व को ग्रहण करता है। शाश्वत साहित्य आधुनिकता को सार्वजनीनता की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा प्रदान करता है और आधुनिकता उसे प्रासंगिकता प्रदान करती है।

प्रत्येक मानव अपने आत्म विस्तार, आत्म संरक्षण और आत्मोपलब्धि का प्रयास करता हुआ भी एक व्यवस्था में रहता है। इसी से व्यक्तियों में एक दूसरे के प्रति सहयोग की भावना का विकास होता है। यही सामुहिक दृष्टि व्यक्तियों की अनेकता में एकता की प्रतिष्ठा करेगी। सामाजिक चेतना का स्वरुप सामाजिक होगा। समाज से विच्छिन्न होकर छोटे–छोटे रुपों में बँटने की संभावना नहीं रहेगी। विहँसता विश्वग्राम होगा। जिसमें साहित्य और साहित्यकार की भूमिका सिद्ध करने के लिए कर्म की सक्रियता और निश्चय की दृढ़ता अपेक्षित रहेगी।

वरिष्ठ और नई पीढ़ी के लगभग 140 लेखकों, कवियों एवं समीक्षकों द्वारा क्रमानुसार सरल, सुबोध भाषा शैली से समायोजित जन–जन के हृदय में सामाजिक, साहित्यिक एवं संस्कृति–गतिविधियों की चैतन्यता को आमंत्रण देना ही 'संभाव्य' हिन्दी त्रैमासिक का मुख्य लक्ष्य है।

आलेख

आनंदशंकर माधवन
सुधियों के चंदन वन में

प्रो० : मृत्युंजय उपाध्याय
वृन्दावन, मनोरमनगर, धनबाद
मो0 : 9334088307

तब उनके वृहत उपन्यास 'अनामंत्रित मेहमान' की बड़ी चर्चा थी। मैंने सहज उत्सुकता से पूछा– ''आप इतना मोटा (1200 पृष्ठों से अधिक) उपन्यास कैसे लिख लेते हैं सर! टालस्टाय के 'वार ऐंड पीस' में चरित्रों की भीड़ है, परंतु उन्होंने उनका निर्वाह किया है। आप इतने चरित्रों का संसार रचते हैं, तो उनका समुचित विकास और सर्वोपरि उनका अंतर्द्वन्द्व दिखाते हैं।'' साँस रोककर वह सुनते रहे। उनका चेहरा भरी हुई बदली के समान हो गया कि अब बरसे कि तब बरसे। सचमुच उनकी आँखें छलछला गईं । मैं उदास हो उठा कि कैसा प्रश्न मैंने कर डाला। मैं चुप रहा। उनके प्रकृतिस्थ होने की प्रतीक्षा की। तबतक उनकी दाय झाड़ू लगाने आ गई। उन्होंने गला खखार कर कहा– ''इसी से पूछ लो मृत्युंजय! जब वह कमरे में घुसती थी, मुझे रोते पाती थी। मैं बीच–बीच में बराबर रोता रहता था। मुझे अपने चरित्रों का दुःख देखा नहीं जाता था। अतः कहानी आगे न बढ़ाकर खूब रोता था। फिर मन को समझाता था, फिर कथा आगे बढ़ाता था। यह क्रम लगातार चलता रहा।''

उपन्यास का ही विद्यार्थी होने के कारण चरित्र, चारित्र्य–सृष्टि, उसके विकास, द्वंद्व आदि की गहरी पकड़ थी मुझे। तब आगरा विश्वविद्यालय से डॉ0 रणवीर सग्रा ने हिंदी 'कथा साहित्य में चरित्र–चित्रण का विकास' पर पी.एच.डी. की थी। प्रबंध प्रकाशित था और इस विषय का मानक ग्रंथ था। मुझे समझते देर न लगी कि चरित्र उपन्यासकार की सृष्टि होता है। वह अपने उद्देश्य, सिद्धांत, वाद, विचारधारा, निहितार्थ के अनुसार चरित्र को जन्म देता है। उसके क्रियाकलाप भी निर्धारित करता है। एक बार जब वह अस्तित्व में आ गया, तो स्वतः परिचालित होने लगता है।

भवानी प्रसाद मिश्र ने लिखा है – ''जिस तरह तू बोलता है उस तरह तू लिख और उसके बाद भी हमसे बड़ा तू दिख''। माधवन जी जैसा सोचते थे, जैसा था उनका संस्कार, उसी के अनुसार चरित्र–सृजन करते थे। फिर चरित्र के साथ रोते थे। लड़ते थे। झगड़ते थे। तात्पर्य यह कि उनका भोग सृजन में व्यक्त होता था। उसे निथारकर, छानकर, अनुकूल बनाकर। टी.एस.इलियट ने लिखा है कि भोगनेवाली मनीषा और सृजन करनेवाली मनीषा में अंतर होता है और यह अंतर जितना गहरा होता है, कलाकार उतना ही महान होता है। माधवन जी अपने चरित्रों के साथ रोते जरुर थे, पर अपने विवेक, अनुभव, देश, काल के अनुसार उसे सही दिशा और गंतव्य भी देते थे , उनसे तादात्म्य करते हुए।

कविता की बात निकली। मैंने ही पूछ दिया– ''कविता पर इतनी किताबें हैं, पंडित हैं, आलोचक हैं फिर भी मैं उसका मर्म समझ नहीं पाता हूँ।'' उन्होंने मेरी ओर देखा, देखते रहे मानो मेरी थाह ले रहे हैं। फिर कहना शुरु किया :

''देखो मृत्युंजय! कविता मनुष्यता की पहचान है। पहले मनुष्य बनो। मनुष्यता के गुण हो। दया, करुणा, उपकार, परदुःखकातरता, त्याग, दान, तितिक्षा, पारस्परिकता आदि हों। पहले तुम्हारा चरित्र हो एक मनुष्य का। फिर तुम्हारा मनुष्य, प्रकृति, ब्रह्मांड से नाता हो। इसके साथ तुम्हारी दृष्टि विकसित होनी चाहिए जहाँ न जाए रवि तहाँ जाय कवि' की तरह।''

''सर दृष्टि से आपका तात्पर्य क्या है? देखता सब कोई है, पर कवि–दृष्टि क्या होती है?'' मेरा प्रश्न था।

''देखो मृत्यंजय! चिड़ियों को उड़ते हुए उषाकाल में सब कोई देखते हैं। परंतु यह किसी ने चिड़ियों को कहाँ पूछा कि वे उषा आगमन का संकेत किस प्रकार जान जाती है और अपने घोसलों से निकल पड़ती हैं।'' पंत ने ऐसा देखा और फूट पड़े :

प्रथम रश्मि का आना रंगिणि कैसे तूने पहचाना,
कहाँ कहाँ हे बाल विहंगिनि पाया तूने यह गाना।
कूक उठी सहसा तरुवासिनी गा तू स्वागत का गाना।
किसने तुझको अंतर्यामिनी बतलाया उसका आना।

–आधुनिक कवि पंत में 'प्रथम रश्मि' कविता ।

''कवि को मनुष्य बनना पड़ता है और अपनी दृष्टि विकसित करनी पड़ती है। प्रकृति के नाना क्रियाव्यापारों में कविता है, मनुष्य एक कविता है, उसके जीवन के घात–प्रतिघात,

जय–पराजय, सुख–दुःख, उसके अंतर्द्वंद्व में कविता है। चारो ओर कविता है मृत्युंजय। इस कविता के अथाह सागर में तैर रहे हैं। 'ध्वन्यालोक' में आनंदवर्धन ने कवि को प्रजापति माना है, जो अपनी इच्छानुसार काव्य–संसार रचता है।''

अपारे काव्य संसारे कविरेव प्रजापति।
यथास्मै रोचते विश्वे तथास्मै सृज्यते।।

मैं फिर कोई जिज्ञासा करुँ, वे ही कहने लगे। ''कविता को तुम सहज स्वाभाविक समझो जैसे तुम्हारी धड़कन। पूर्वी क्षितिज पर वालारुण का उदय; पक्षियों का कलरव।''

कविता है कवि हृदय क्षितिज में
बालारुण का आना।
जीवन की प्राची में उठकर,
मधुर मधुर मुसकाना।

–गोपालशरण सिंह नेपाली : कवि और कविता।

''इतना ही नहीं मृत्यंजय! ग्रीष्म की पंचाग्नि जब जग के कंठ–कंठ में प्यास जगाती है, कविता वृक्ष की शीतल और सुवासित छाया बन जाती है:''

आती ग्रीष्म जगाती जग के कंठ कंठ में प्यास,
कविता छाँह बनी तरुवर की शीतल सलिल सुवास।
–उपरिवत्।

मैंने उन्हें टोका, ''यह तो सर आप कविता के व्यापक प्रभावऔर अवदान की चर्चा करने लगे। मैं तो कविता की प्रेरणा और उसकी रचना प्रक्रिया पर जानने के लिए उत्सुक हूँ। चाहता हूँ आप सबकुछ खोलकर बताइए।''

''देखो, मृत्युंजय! मैं जो भी बोलता हूँ, सहजता, स्वाभाविकता से। उसमें मेरा अनुभव, संस्कार, सृजन – सुख सब मिला रहता है। कोई किसी से भिन्न थोड़े ही है? सबकुछ एक सतत प्रवाह–सा है। अगाध, अबाध प्रवाह। निरंतर बहता हुआ। रससिक्त करता हुआ। जड़–चेतन, अग–जग सबको आप्यायित, प्रमुदित करता हुआ।''

मैं सोचने लगता हूँ – ईसामसीह का कथन कि ''तुम पीड़ितों, दुःखितों के साथ रो न पाए, आनंद मनानेवाले के साथ खुलकर हँस न पाए, तुम हमदम, हमसफर नहीं हुए, तो तुम मनुष्य हुए तो क्या हुआ। तुम पशु से जरा भी अलग कहाँ हो?'' शायद, वे मेरा द्वंद्व समझ रहे हैं और कह उठते हैं। ''तुम कहते हो हासिए (Margin) के आदमी को जगाकर ही देश का उद्धार होगा। मानवता का कल्याण होगा। हासिए का वही आदमी 'भिक्षुक' का भिक्षुक, 'वह तोड़ती पत्थर' की मजदूरिन, गर्मी की चिलचिलाती धूप में सड़क पर रॉलर के आगे–आगे बालू, छर्री, पानी फेंकनीवाली, डबल्यू बी इट्स का हथौड़ा चलाकर सड़क तैयार करनेवाला मजदूर कविता का प्रतिपाद्य है। वही है कविता का कच्चामाल मृत्युंजय!''

यह सुनकर मुझे दो बातें एक साथ ही याद आ जाती हैं। देवराज का लेख 'साहित्य का प्रयोजन' जिसमें साहित्य का अभिप्रेत बुद्ध का महाभिनिष्क्रमण और रेल की इंजन का धुआँ दोनों हैं। भगवती चरण वर्मा की कविता 'भैंसागाड़ी' की दो पंक्तियाँ

दिन भर खटकर भूखों मरकर
भैंसागाड़ी पर लदा जा रहा चला मानव–जर्जर।

मानव की जर्जरता, दुर्दशा कविता का प्रतिपाद्य है। इसी निराशा–हताशा, अंधियाले के बीच से उजाला बरसेगा – यह कविता का कथ्य है। तत्क्षण मुझे स्मरण हो आता है 'उषा' के द्वितीय पृष्ठ (मुख पृष्ठ की दूसरी ओर) पर उनका आत्मकथ्य 'परिचय' :

मैं अनपढ़ों अपराधियों
पापियों और बेसहारा का कवि हूँ
धनी मानियों साधु–संतों
राजनीतिज्ञों और औरतों के कवि
मेरी समालोचना और निंदा शिकायतें करेंगे ही
मेरे लिए यश और पैसे
आराम और शांति असंभव है
ये सब उनलोगों के हिस्से में हैं
मेरे भाग्य में अपमान और आंसू
पसीने और थकावट ही लिखी है
मैं दुखी नहीं हूँ
क्योंकि ईसा भी दुखी नहीं थे
मगर मैं इन बेसहारों के हाथ में
सुदर्शन चक्र देकर ही जाऊँगा
इन सुवर्ण लंकाओं को धराशायी करके ही जाऊँगा
परमेश्वर को मेरी वाहवाही करनी ही होगी
मैं परमेश्वर की जयजयकार नहीं करुँगा
ऐसा काम करुँगा, ऐसी स्थिति पैदा करुँगा कि उन्हें बाध्य होकर मेरी जयजयकार करनी होगी
मेरे लिए यही चारित्र्य है, यही स्वावलंबन है
यही समाधि और साक्षात्कार भी है।
– आनंदशंकर माधवन, मई 1968।

मेरा ध्यान दिनकर की पंक्तियों पर चला जाता है–

मैं उनका आदर्श कि जो अपनी व्यथा न खोल सकेंगे
पूछेगा जग किंतु पिता का नाम न बोल सकेंगे।
–रश्मिरथी।

मुझे माधवन ही के उषा का परिचय याद है :

''मानव ही साहित्य का विषय है, उसे परमात्मा के पास पहुँचा देना ही साहित्य का लक्ष्य है और इस कार्य में जो भी लगे हुए हैं, अहर्निश पागल हैं, उन्हें आपको साहित्यिक मानना ही पड़ेगा चाहे वे लिखें या न लिखें।''

माधवन जी ने जीवन के एक एक पल का सदुपयोग किया है। उसे सत्कार्य, सोद्देश्य के लिए जिया है। शिक्षा उनके लिए आत्मा का प्रकाश है। मनुष्य का जागरण, श्रेयार्थ अभियान शिक्षा का निहितार्थ है। 'शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य क्या है?' पूछने पर वह धारा प्रवाह बोलने लगते हैं। ''देखो मृत्युंजय! मानव की सद्अभिलाषाएँ परमेश्वर की योजना है। मानव की सद्इच्छाएँ ही अंततोगत्वा संसार में घटती हैं। इन सद्अभिलाषाओं को चरितार्थ करने की क्रिया को ही शिक्षा कहते हैं। इसे वे विभूतियोग से जोड़ देते हैं। सच्ची शिक्षा विभूति योग है, जिसमें मानव की अशेष क्षमता, सृजनशीलता का जागरण होता है।''

''सुधियों का यह चंदन वन मुझे सदा सुवासित प्रेरित करता रहता है। उसे अभिव्यक्ति के आकाश देने में कई खतरे हैं, सीमाएँ हैं। जो विस्मृत हो गए, वे चाहे आख्यान के तर्क से कितने ही जरुरी हों, संस्मरण में नहीं आ पाते। मसलन संस्मरण में कार्य–कारणवाली तर्क प्रणाली अनुपस्थित हो तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए। संस्मरण में किसी का पूर्ण जीवन नहीं आ पाता है। जीवन समय के कुछ टुकड़े आते हैं, जिन्हें आत्मीय और जीवंत तरीके से पुनर्सृजित किया जाता है।''

वर्जीनिया वुल्फ ने अपनी डायरी में लिखा है :

''मैं यही नोट कर सकती हूँ कि अतीत सुंदर होता है क्योंकि उस वक्त की भावना का अहसास लोगों को कभी नहीं होता । बाद में उसका अहसास विस्तारित हो जाता है और इसीलिए हमारे पास वर्तमान के लिए पर्याप्त भावना नहीं होती, बस अतीत के लिए होती है। मुझे लगता है कि हम इसीलिए अतीत के बारे में ज्यादा सोचते हैं।'' स्मृति हमें पहचान ही नहीं देती बल्कि अतीत और वर्तमान के बीच एक पुल का काम भी करती है। जब स्मृति हमपर हावी होती है, तो वही होता है, जो दुष्यंत कुमार ने लिखा : ''तुम रेल सी गुजरती हो, मैं पुल सा थरथराता हूँ।'' (साए में धूप)

स्मृतियों की सीमा शक्ति के उल्लेख के साथ यही कहना है कि उस महामानव से मैं तीन बार ही मिल पाया। पहली बार एकांत और वैयक्तिक मिलन था, दूसरी, तीसरी बार उनके जन्मदिवस (शिवरात्रि के दिन) पर मिलना हुआ, जहाँ एकांत वार्तालाप की संभावना क्षीण थी। पहली बार जन्म दिवस पर पहुँचा, तो व्याख्यान चल रहा था। मंच के एक कोने में नीचे पैर लटकाए टुड्डी पर ऊँगली रखे माधवन जी के दर्शन हुए। चरण स्पर्श कर मैं सीधा हुआ ही था कि माइक से व्याख्यान के लिए मेरे नाम की घोषणा हो गई। मुख्य सड़क से सभा स्थल तक पहुँचने में जितना समय लगा, व्याख्यान का कुछ अंश सुन पाया। फिर मैंने ध्यान नहीं दिया। परंतु अपना नाम सुनकर सचेत हो गया और याद करने लगा कि वे गीता पर बोल रहे थे। फिर क्या था! मैंने लगभग एक घंटा गीता के 'निष्काम कर्मयोग' पर व्याख्यान दिया। श्रोताओं में मुझे किसी की पर्वाह नहीं थी, सिर्फ माधवन जी की। एकांत में वे बोले मेरी पीठ ठोंकते हुए– ''तुमने पढ़ा भर नहीं है गढ़ा है, गुना है, तभी इस अधिकार के साथ बोल पाते हो। ... देखो मृत्युंजय! इस बार तुमको समय नहीं है। अगली बार एक सप्ताह यहाँ रहना। रोज एक–एक घंटा बोलना। विषय बोलने के दिन ही दूँगा।'' मैं डर से कुछ बोला नहीं। क्या पता, आ ना पाऊँ, आ जाऊँ, तो नए विषय पर मुँह ही न खुले। पर मन में संकल्प एक साल तक आकार लेता रहा, जिसकी परिणति अगले वर्ष हो पाई। मैंने वहाँ पाँच व्याख्यान दिन – 1. शिक्षा और संस्कृति, 2. भारत में वेद का महत्व, 3. गुरुकुल परंपरा और आज की शिक्षा पद्धति, 4. संस्कृत शिक्षा की आवश्यकता, 5. वाल्मीकि और तुलसीकृत रामायण की तुलना। श्रोता शिवधाम के ही कर्मचारी, शिष्य और सर्वोपरि श्रोता माधवन जी। एक कोने में चुपचाप बैठे हुए, ठुड्डी पर ऊँगली टिकाए। मैं उन्हीं को ध्यान में रखता और बोलता जाता। उनकी ओर ही निहारता, तो वहाँ अखंड शांति रहती। पर उत्सुकता भी भरपूर। किसी भी दिन मेरे व्याख्यान पर कुछ न बोले। जिस दिन मुझे लौटना था, उस दिन बोले : ''मृत्युंजय, तुमने अत्यंत विद्वतापूर्ण व्याख्यान दिए। नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा का पग–पग पर परिचय दिया। कभी किसी तथ्य, कथन की पुनरावृति नहीं की। जरुर तुममें कोई दैवीय कृपा का वास है।''

वे मूलरुप में एक दार्शनिक हैं। साहित्य बिना दर्शन के नहीं चलता और दर्शन का अपना साहित्य है। दोनों की मूलवस्तु है चेतना। काव्य या साहित्य इसी चेतना की नैसर्गिक अभिव्यक्ति का माध्यम है। माधवन जी मनुष्य की स्वाधीनता और स्वाभिमान के लिए निरंतर लड़ते रहे हैं। उनकी सबसे बड़ी और सच्ची आस्तिकता और अत्याचार के खिलाफ संघर्ष का संकल्प। दुर्दांत और अपराजेय, सृष्टि के विराट दृश्य–विस्तार के समान। वे पाब्लो नेरुदा की तरह ही निरंतर संघर्षरत, स्वाभिमानी और मानवता के मसीहा हैं। वे पर्वत के समान सीधे, तने हुए हैं, तो समुद्र की तरह अजेय :

''किंकियाता नहीं समुद्र/किसी के चरणों पर झुककर / नहीं जानती तूफान की आवाज / जी हुजूरी / सलाम नहीं करता पर्वत / किसी को झुककर (गुरिल्ला : पाब्लो नेरुदा)

माता जी का स्नेह, आशीर्वाद मिला, ममत्व मिला। वह मेरी पूँजी है, जीवन–शक्ति है। माधवन जी जब उनकी चर्चा करते, उसमें कितने अगाध, प्रेम, समर्पण, पारस्परिकता का बोध होता – मैं कह नहीं पाता। महामानव की उन्नति में पत्नी की क्या भूमिका होती है– यह उनके व्यक्तित्व से परखा जा सकता है। उनसे (माताजी) मिल सका एक बार, पर उनके स्नेह की छाया आज भी महसूसता हूँ।

माधवन जी पर जितना कहा जाए, जो–जो याद किया जाए, सब अपूर्ण है। यह एक झाँकी भर है उस विराट को बाँधने और असाध्य को साधने की। जितना कहा जाए, कहने को शेष बहुत रह जाता है।

आज मानवता ऐसे ही महापुरुषों के अवदान पर जीवित है। वैसे संस्मरण काल्पनिक साहित्य नहीं है। संस्मरण लेखों द्वारा कथात्मक ढाँचे का उपयोगक, पठनीयता, साहित्यिकता और लोकप्रियता हासिल करने के उद्देश्य से किया जाता है। कथात्मक ढाँचा उसे आकर्षक बना देता है। इसीलिए संस्मरण में वातावरण–चित्रण, चरित्रांकन, नाटकीयता, संवाद का उपयोग तो अनिवार्य रुप से होता ही है। कुछ संस्मरणों में चरमोत्कर्ष का भी रुप मिलता है। यहाँ ऐसी घटनाएँ हैं, ऐसे प्रसंग हैं, जिन्हें याद कर मन को एक सुकून मिलता है। अपने भाग्य पर गर्व करने का मन करता है कि उस महापुरुष के साहचर्य में मैं रहा। उनके महामानव होने का लाभ पाया, विश्वमानवता के प्रति उनकी दृष्टि का साक्षी रह पाया। सर्वोपरि यह कि वह जो जीवन वस्तुतः जीते थे, वही साहित्य में व्यक्त करते थे। जीवन और लेखन में सामंजस्य स्थापित करना कितनी बड़ी बात है पर वे कथनी–करनी के अपूर्व समन्वय थे। उन्हें याद करना मानो एक महानुभाव की सुरभि का झोंका लेना है।

आचार्य नागार्जुन

प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक आचार्य नागार्जुन दक्षिण भारत के माध्यमिक दर्शन के प्रणेता शून्यवादी कहे जाते हैं. ये शून्य को परमार्थ सत्य मानते थे. नागार्जुन के इस मत का अद्वैतवाद पर प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष प्रभाव देखा जा सकता है. कहा जा सकता है कि उनके सिद्धान्त ही अद्वैतवाद की दशा तय करते हैं। माध्यमिक तथा अद्वैतवाद दोनों ही व्यावहारिक जगत् के अनुभव को निरावृत कर परमार्थ सत्य निरूपण करते हैं।

गज़ल

देव नाथ द्विवेदी
एडमंटन, अल्बर्टा, कनाडा

याद आ जाती हैं, जब चूल्हे में सिंकती रोटियाँ
माँ से जुड़ जाती हैं तब चूल्हे में सिंकती रोटियाँ

एक घर में लोग कितने, ख्याल सबके मुख्तलिफ़
बांधती जाती हैं सब चूल्हे में सिंकती रोटियाँ

स्वाद, सोंधापन, वो दे जातीं हैं कितना अपनापन
मुँह में घुल जाती हैं जब चूल्हे में सिंकती रोटियाँ

उम्र के टीले में दब कर रह गया जो बचपना
ढूंढ कर लाती हैं अब चूल्हे में सिंकती रोटियाँ

माँ के मन में रोटियों के साथ जो पकता रहा
वो बता पाती हैं अब चूल्हे में सिंकती रोटियाँ

उसकी पुरनम आँख में डूबी हैं कितनी ख्वाहिशें
ये छिपा जाती हैं सब चूल्हे में सिंकती रोटियाँ

झुर्रियों से लैस माँ के हाथ में था क्या हुनर!
ये बता जातीं हैं अब चूल्हे में सिंकती रोटियाँ

वो गयी तो संग अपने घर समूचा ले गयी
उफ़! न मिल पाती हैं अब चूल्हे में सिंकती रोटियाँ

2.

किये धरे की चलो आज पड़ताल सघन कर लें
एक ढेर में कंचन दूजे में पाहन धर लें

साँसों ने बुन दिया एक सादी बदरंग उमर
इंद्रधनुष में इसे डुबो खुशनुमा वसन कर लें

मिट्टी, हवा, नदी, जंगल ने कितना हमें दिया
कल के लिए बचाने को हम इन्हें जतन कर लें

ठुसी किताबों से बच्चों के बस्ते बोझ हुए
गीत कहानी देकर उनकी हर उलझन हर लें

ठंडे रिश्ते टूटे घर भूले बिसरे परिजन
फिर सबसे जुड़ जाएँ खाली अन्तर्मन भर लें

बांहों में बंधने का सुख आशीषों के निर्झर
इन्हें ढूंढ कर लायें जीवन को जीवन कर लें

समीक्षा

अँधेरे से बाहर उम्मीद और रौशनी की कवितायें

विनोद कुमार
उपाध्यक्ष 'निराला साहित्य परिषद्'
महमूदाबाद (अवध), सीतापुर (उ0 प्र0)

'उधेड़बुन' हर सजीव प्राणी के अन्दर कभी न कभी अवश्य होती है। छोटे लोगों के पास अपनी छोटी उधेड़बुनें हैं तो बड़े बड़े लोग बड़ी बड़ी उधेड़बुनों में लगे हैं। इस क्रम में युवा कवि राहुल देव का यह पहला कविता–संग्रह 'उधेड़बुन' शैशव से लेकर युवाकाल तक की तमाम चिंताओं का चित्र देती है। इस कविता–संग्रह को हाथ में लेते ही सर्वप्रथम शीर्षक पर ही मेरी निगाह ठहर गयी, शीर्षक अपने अर्थों में व्यापक है क्योंकि आज के इस कठिन समय को देखते हुए मनुष्य की दुश्चिंताओं के अन्दर चलने वाली यह एक अनन्त प्रक्रिया है । ठीक इसी प्रकार किशोरावस्था में रची गयी ये कविताएँ जबकि कवि स्वयं को किसी निश्चित बिंदु पर ठहरा हुआ नहीं पाता तब उसकी कविता अपने आंतरिक और बाह्य संसार से जूझकर अपनी एक अलग राह स्वयं निर्मित करती है। राहुल अपने प्रारंभ से ही चीज़ों को 'उधेड़ते' और 'बुनते' रहे हैं और ऐसा मैं निश्चित रुप से इसलिए भी कह पा रहा हूँ क्योंकि मैं इस कवि के जन्म से लेकर अब तक के निजी जीवन का साक्षी रहा हूँ।

इस संग्रह की पहली कविता व्यष्टि को समष्टि में तिरोहित करती दिखाई देती है। तो संग्रह की दूसरी ही कविता एक लम्बी कविता है। 'छद्मावरण' शीर्षक से इस लम्बी कविता में जीवनानुभूति का विडंबनात्मक, व्यंग्यात्मक चित्र है। पूरी कविता से गुजरने के बाद लगता है कि कवि में चरित्र चित्रण और चरित्र के अंतर्द्वन्द्व की गहरी पहचान है। यह कविता यथार्थ का कटु व सजीव अभिव्यक्तिकरण है। एक लम्बी छन्दमुक्त कविता में निरंतर एक व्यक्ति के अंतःकरण और बाह्य जीवन का द्वन्द्व चित्रित करना कवि की एकाग्रता और सघन अध्ययन का परिणाम है। इस कविता को पढ़ते हुए अपनी कुछ पंक्तियाँ याद आती हैं, 'पैरों में पादुका पहन कौन जान सका–/ धूल गर्म होती है कौन पहचान सका/ क्षुधा तृप्त होने पर भूख संभ्रम है/ असफल व्यक्तियों की पीर कौन जान सका?'' इस एक कविता में दूसरा जन्म भी ले आना केन्द्रीय चरित्र का चरित्र की शक्ति और वर्णनात्मक क्षमता से युक्त है राहुल की कलम। थोड़ा ध्यान से पढ़ने पर मुझे तीन जन्मों की कथा मिलती है एक कवि चरित्र की। एक कविता में तीन जन्मों का लेखा–जोखा कम शब्दों में सिद्ध करता है कि कविता में सूक्ति शक्ति का सफल प्रयोग हुआ है। कविता के अंत में किया गया व्यंग्य तीखा है तथा धर्माधीशों को चुभेगा जब कवि लिखता है कि, ''प्रसाद रुपी मिष्ठान/तुम्हें सिर्फ सुंघाया गया तुम कुछ नहीं कर सकते थे/ लार घोटने के सिवा''।

अगली कविता 'सपने की बात' को भी एक लम्बी कविता की श्रेणी में रखा जा सकता है। इस कविता में कवि अपने व्यक्तिगत जीवन की समस्याओं का समाधान सपनों में पाता है। सपनों की यह दुनिया बड़ी रुमानी है और यथार्थ से संपृक्त भी। इस कविता में वह सपनों के माध्यम से रोमांस, विवाह और देहान्तरण जैसे विषयों को एक साथ पिरो ले जाता है। 'पतझड़ के बाद' शीर्षक कविता इस संग्रह की एक दार्शनिक कविता है। विद्वानों का मत है कि हर दार्शनिक कवि नहीं होता, लेकिन हर सच्चा कवि दार्शनिक होता है। उम्र के जिस दौर में यह कवितायें रची गयी है अपने भरपूर अनगढ़पन को लिए हुए कहीं–कहीं हमें सहसा चकित भी करती हैं। मुझे तो लगता है कि शायद कवि को खुद भी भान नहीं रहा हो कि कई जगहों पर वह कितनी बड़ी बात कर गया है। कविताओं में भाव विचारों का अदभूत संतुलन है।

जहाँ 'ओह कामना वह्नि' कविता को पढ़ते हुए दिनकर की पंक्तियाँ याद आती हैं, 'कामना वह्नि की शिखा/ मुक्त मैं अनवरुद्ध/ मैं अप्रतिहत, मैं दुर्निवार !'' वहीं 'मौन व्यथा' शीर्षक कविता में, ''अरे यायावर!/ तू महान है/ तेरी व्यथा, तेरी खुशी/ रुपी में सब कुछ की तरह/ समाई सारतत्व गीता की तरह...'' लिखकर कवि ने नवीन उपमान का प्रयोग किया है। 'चिंतन' शीर्षक कविता में राहुल एक दार्शनिक की तरह संसार और अंतर्जगत को देखते हैं। बचपन, किशोरावस्था और युवाकाल की भूमि तक आते आते ऐसी गद्यात्मक कविताओं की रचना संकेत करती है कि राहुल को भविष्य में अच्छा गद्यकार बनने की पूरी गद्यात्मक है। संग्रह में आगे की तमाम कविताओं को पढ़ते हुए यह भी लगा कि राहुल के अन्दर के आलोचक को समझने के लिए बुद्धि प्रधान अध्ययन आवश्यक है पाठक के लिए; क्योंकि कहीं कहीं पर राहुल का वैचारिक गुम्फन बहुत जटिल है, उन्हें समझने में 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' सहायता नहीं करता है। राहुल इस बौद्धिक युग के बौद्धिक कवि हैं, जिसने अपने जीवनानुभवों और अपने प्रतिसंसार को अपनी इन कविताओं में उतारा है।

आज की काव्यभाषा में कहें तो एक आध्यात्मिक अभिव्यक्ति है 'विश्वनर से' शीर्षक कविता तो 'कर्म' शीर्षक कविता में कर्म की सहज अभिव्यक्ति की गयी है कर्मकार के चरित्र से, जो किसी भी देश की वास्तविक शक्ति होता है। 'नवजीवन' मे कवि एक नूतन संसार की कल्पना में रत है। यहाँ पन्त की पंक्तियाँ याद आती हैं, ''अये विश्व के स्वर्ण स्वप्न– संसृति के प्रथम प्रभात!'' 'अंतर्द्वंध' कविता में सच्ची मनुष्यता की तलाश दिखलाई पड़ती है। 'प्रतीक' अपने आप में एक प्रतीकात्मक शब्दचित्र है तो एक नारी मन का, उसके जीवन की

विडम्बनाओं को शाब्दिक चित्र है 'सेज'। 'ओस की वह बूँद' व्यष्टि से समष्टि के बीच रिश्ते को व्यक्त करती है और लघुता की निजता में पारावार की विराटता के दर्शन देती है। 'परख' कविता कहती है कि चीजों को ज्यादा परखते–परखते मनुष्य अपना उद्देश्य भूल बैठा है। एक शायर कहता है, ''परखना मत परखने से कोई अपना नहीं रहता/ किसी भी आईने में आपका चेहरा नहीं रहता।''' 'पाप' कविता पर अमर उनन्यासकार भगवती बाबू की लाइन जोड़ता हूँ, 'न हम पाप करते हैं न पुण्य करते हैं। हम वही करते हैं जो हमें करना पड़ता है।''' 'रहस्य' को हर लेखक, कवि, विचारक जानना चाहता है, राहुल भी उनमें एक हैं, लेकिन जन्म से पहले और मृत्यु के बाद सिर्फ अनबूझा रहस्य ही है और वह अभेद्य है। 'पथिक भ्रमति न होना' कविता कवि की अपनी कठोर यात्रा से दूसरों को भी कठोरताओं से न घबराने का सन्देश है; क्योंकि कहीं न कहीं तो ठौर मिलेगा ही, आशियाना छोटा सा बनेगा ही। विलियम वर्ड्सवर्थ कहता है– ''चाइल्ड इज द फ़ादर ऑफ़ मैन'' किसी बच्चे को एकलव्य न होना पड़े राहुल इसे कविता 'बच्चे और दुनिया' में प्रस्तुत करते हैं। 'सिर्फ कविता के लिए' शीर्षक कविता सिद्ध करती है कि कविता के लिए तो अब उसकी कविता, उसका जीवन बन चुकी है। 'सौन्दर्य' कविता को कीट्स की लाइनों से जोड़ता हूँ, 'ए थिंग ऑफ़ ब्यूटी, जॉय फॉरएवर' तो 'बकरी बनाम शेर' विडंबनात्मक व्यंग्य है इस युग का ।'आधा सच' शीर्षक कविता आज के चलते हुए मुहावरों के प्रयोग के लिए एक अच्छा उदाहरण है। गली–कूंचों और सड़कों पर बहते–फैले वाक्यांशों को अपनी रचना में सुगठित ढंग से प्रयोग कर ले जाना मैं कवि की कलम की सफलता मानता हूँ। 'भ्रष्टाचारम उवाच' में एक ईमानदार आत्मा, बेईमानी, जालसाजी जैसे हवाले और घोटाले स्पष्ट रुप से दिखाई दिए हैं, 'मैं बदनीयती की रोटी संग मिलने वाला/ फ्री का अचार हूँ/ पॉवर और पैसा मेरे हथियार हैं/ मैं अमीरों की लाठी/ और गरीबों पर पड़ने वाली मार हूँ!'' उपरोक्त पंक्तियों में भ्रष्टाचार पर बिलकुल नूतन उपमान हैं।

'अक्स में 'मैं' और मेरा शहर' इस किताब की एक महत्वपूर्ण कविता है। कवि के तेवर इस कविता में देखते ही बनते हैं। राहुल लय, सुर, ताल के बंधनों से आज़ाद हैं, लेकिन जिंदगी को देखने के लिए उनके पास वाह्य चक्षुओं के साथ अन्तः चक्षुओं की शक्ति काफी प्रबल है। इस कविता को पढ़ते हुए नीरज याद हो आए, ''कदम–कदम पर मंदिर मस्जिद/ डगर–डगर पर गुरूद्वारे/ भगवानों की बस्ती में हैं जुल्म बहुत इंसानों पर।'' राहुल मानववादी है। उसकी अन्तः और बाह्य यात्राओं का सघन गुम्फन देखने को मिलता है इस रचना में। 'कविता और कविता' में ठूंठ से कोंपलों का फूट पड़ना नया उपमान है, इसी तरह जंगल में झाड़ियों का उग आना भी नूतन उपमान है। 'हारा हुआ आदमी' अपने सशक्त कथ्य के कारण अपने अर्थ में बहुत दूर तक ध्वनित होने वाली कविता है। इस कविता ने मुझे वैचारिक स्तर पर बड़ा आंदोलित किया । इस संकलन की आख़िरी कुछ कविताओं में वह कविता में प्रतिरोध भी रचते हैं। इनकी कविताओं को पढ़ने के साथ साथ मैंने उन्हें कई गोष्ठियों में सुना भी है। उनकी शैली बड़ी मौलिक और प्रभावी है। राहुल सच को स्पष्ट शब्दों में बगैर किसी दुराव–छुपाव के सच कहने की हिम्मत रखते हैं। उनकी साफगोई मुझे अच्छी लगती है। वहअपनी कविताओं में कई बार ऐसे विषय भी उठा लेते हैं जिनके बारे में आज कोई समकालीन कवि लिख ही नहीं रहा। 'अनिश्चित जीवन : एक दशा दर्शन' में जीवन और मृत्यु जैसे जटिल विषय को कविता में समझने और खोलने का ही एक प्रयास है। अंग्रेजी का निबंधकार स्टील कहता है औसत तीस वर्ष की उम्र के पहले मृत्यु के बारे में कोई सोचना नहीं चाहता। संस्कृत साहित्य के गर्भित सूक्ति वाक्यों के साथ इस संसार के दो छोर नापने की कोशिश करने वाले इस युवा को समकालीन कविता में कमतर करके नहीं आंकना चाहिए।

विज्ञान की भाषा में मन कहाँ है, लेकिन फिर भी अमूर्त मन है सबके पास। 'मेरे मन' शीर्षक कविता में कवि का वही मन एक साथी की तलाश में है। 'प्रेम पथ का पथिक' कविता को मैं अपनी कविता की कुछ पंक्तियों से जोड़ता हूँ, ''जब–जब पूनम के चंदा ने/ हृदय उदधि में ज्वार उठाया/ ऊँची उठी तरंगें/ तुम तक तो मैं पहुँच न पाया!'' संग्रह में 'अंतिम इच्छा' शीर्षक कविता कवि के अपने समय से आगे बढ़कर लिखी गयी कविता है। इस कविता को पढ़कर अंग्रेजी कवि राबर्ट ब्राउनिंग की कविता 'लास्ट राइड टुगेदर' याद आती है। यह उदात्त भावनाओं की एक मार्मिक रचना है। एक शराबी की शराबी संवेदनापूर्वक चित्रित की गयी है 'नशा' शीर्षक कविता में, बिम्बधर्मिता कमाल की है। 'अपराधी' कविता में किसी व्यक्ति के आतंकवादी बनने का मनोविज्ञान है और गाँधी की पंक्ति 'पाप से घृणा करो पापी से नहीं' से रास्ता भी सुझाता है कवि। 'सज्जनों के लिए' कविता युगबोध को दर्शाती है और कहती है कि सज्जन लोग यदि प्रैक्टिकल न हुए तो आज की दुनिया उन्हें निगल जायेगी। 'कौन तुम' कविता में स्थूल और सूक्ष्म, आत्म एवं परमात्म सत्ता का स्वरुप देखा जा सकता है। 'मेरे सृजक तू बता' शीर्षक कविता में कवि कहता है, मन से सुनने वालों की कमी है। सुनने वाले तो मिल भी जाएँ, लेकिन भाषन करने वाले लोग बहुत कम हो गये। कविता छोटी है, लेकिन मारक है। फ़िराक साहब की दो लाइनें अनायास याद आती हैं, ''न समझने की बातें हैं– न समझाने की बातें हैं/ जिंदगी नींद है उचटी हुई दीवाने की।''

'ये दुनियाँ : ये जिंदगानी' नए उपमानों की दृष्टि से अच्छी कविता कही जायेगी। वर्ण्य विषय के साथ जैसे सायकिल के ट्यूब का पन्क्चर, गैस के सिलिंडर का ख़त्म होना, कमरतोड़ महंगाई और जनसँख्या, बराबर पीठ पर लदा नटखट बच्चा। इन नवीन उपमानों को उद्दत करने का कारण यह है क्योंकि यह लिखने वाले के नूतन उपमान हैं! इनको लाने का कार्य अज्ञेय ने किया। अतः कवि प्रगतिशील होने के साथ साथ प्रयोगधर्मी भी है। 'एक टुकड़ा आकाश' कविता में खण्डों में बंटा हुआ जीवन लगभग हर पहलू को स्पर्श करता है। जितना कुछ कवि की दृष्टि में आ गया है वह इस कविता के टुकड़े में समाया है। 'राजस्थान की एक लड़की' में कवि की सूक्ष्मता से देखने वाली आँखें

और संवेदनशील विशाल हृदयता के दर्शन होते हैं। डाल से बिछुड़ी हुई टहनी/झुण्ड से बिछुड़ा हिरन जैसी बातें भी याद आ जीत हैं इसको पढ़कर। अंत में लोगों की संकुचित मानसिकता पर कटाक्ष करते हुए उसे भारत की बेटी कहकर कवि कविता में अपने निर्वाह तत्व का लक्ष्य एक सीमा तक पूरा कर लेता है। 'शहर की सड़कें' में दिन–प्रतिदिन होने वाले हादसों के प्रति सड़कों पर गुज़रते राहगीरों की असंवेदनशीलता का चित्र है, लेकिन इसके लिए भारत की बढ़ती जनसँख्या, कानूनी पेचीदगी भी तो ज़िम्मेदार है। कविता पाठक को अपने अंत के साथ विचलित कर देती है, जब पता लगता है कि सड़क की हर एक घटना अगले दिन के अखबार की ख़बर से ज्यादा कुछ नहीं।

'महाप्रलय' शीर्षक की एक महत्त्वपूर्ण कविता पढ़कर मुझे एसटी, कोलरिज की 'राइम ऑफ़ द एशियेंट मानिरर्स' याद आ गई। मैं जानता हूँ कि रुाल विज्ञान के विद्यार्थी रहे हैं। अतः अंग्रेजी की यह कविता उन्होंने नहीं पढ़ी होगी, फिर भी उस कविता जैसा कुछ तत्व मुझे इसमें दिखा। मैं यह इसलिए भी लिख रहा हूँ; क्योंकि दुनिया भर के कवि के दिलों में ऐसी बातें आती हैं। हाँ मानता हूँ कामायनी का जल–प्लावन कवि की चिन्तना में जरूर समाया होगा। समकालीन कविता समय में ऐसी श्रेष्ठ कवितायें भी रची जा रही है देखकर हिंदी कविता के सुखद भविष्य की आश्वस्ति होती है। कविताओं में कहीं कहीं आई सपाटबयानी राहुल की अपनी निजी है। 'अनहद नाद' जैसी कविता में कवि की जनपक्षधरता का सहज आभास मिलता है। इस कविता के माध्यम से कवि प्रस्तुत करता है चित्र उस व्यक्ति का जो समाज के सबसे निचले पायदान पर पहुँच कर भिखारी हो गया है, यह सामाजिक सरोकार की कविता है।

'गाँव से शहर तक' मे कवि प्रेमचंद का गाँव खोज रहा है। ग्रामीण मानसिकता में भी शहरों का बढ़ता हुआ जंगल का मीठा जहर घुस गया है, जोकि आज का कड़वा सच है। अपने कालखंड के भौगोलिक परिर्वतन पर भी कवि की नज़र है। राहुल स्वयं कवि है इसलिए ठीक नपेतुले वाक्यांशों में इसे सिद्ध करते चले गये हैं और 'कवि ऐसा होता है' एक सार्थक कविता बन जाती है। कहा जाता है प्रेमी, पागल और कवि एक जैसे होते हैं, मगर वे नकली नहीं होते तो पथान्वेषी होते हैं। टेनिसन कहता है, ''चेंज इज द लॉ ऑफ़ यूनिवर्स'' राहुल फूलों को यह शाश्वत परिवर्तन बताना चाहते हैं अपनी 'परिवर्तन' शीर्षक कविता में। दलदल बहुत प्रकार का होता है और राहुल की 'दलदल' शीर्षक कविता जीवन के बहुआयामी दलदल का चित्र प्रस्तुत करती है। यह कविता अपने अर्थों में एक बड़े कैनवास की ओर संकेत करती है। उनकी कुछेक कविताओं में शब्दस्फीति थोड़ी ज्यादा है, शिल्प भी कहीं– कहीं टूटता है और कहीं–कहीं पर संस्कृत तथा अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। चूँकि यह संग्रह कवि की काव्ययात्रा के प्रारंभ की घोषणा करता हुआ आया है। अतः काव्यशास्त्री या आलोचकीय दृष्टि से इस पक्षपर बहुत ज्यादा विवेचन किया जाना उचित नहीं प्रतीत होता। संग्रह की अंतिम कविता 'एक आस्तिक की स्वीकारोक्ति' में कवि अंग्रेजी के दो हस्ताक्षरों के समीप पहुँच जाता है, वे हैं टैनीसन और टॉमस हार्डी; क्योंकि ये दोनों प्रकृति को वर्ड्सवर्थ की तरह नहीं देखते हैं। ''सारा तंत्र ही भ्रष्ट है/ समय का फेर है/ यह उबाल कैसे न आता/ जब नदी का पानी/ खतरे की रेखा से ऊपर बह रहा हो!'' कविता की उपरोक्त पंक्तियाँ हर विवेकशील को सोचने पर विवश कर देती हैं। प्रकृति का शत्रुवत व्यवहार, सृष्टि के प्रति, विधि–विधान और नियतिवाद से गुज़रता हुआ कवि ऐन्द्रिक संसार अंगों के कार्य व्यापार को खोलता जाता है। कवि आस्तिकता की परम्परागत बेड़ियों को अपने तर्कों से तोड़कर आस्था का अपना एक नया मानदंड निर्मित करना चाहता है। कविता में स्त्री–पुरुष के संबंधों पर अपनी सोच के अनुसार कवि का मौलिक विश्लेषण भी सामने आता है।

समग्रतः कहा जाए तो राहुल अपनी सीधी, सरल भाषा में दोनों, भावों और विचार के स्तर पर बहुत गहरे तक प्रभावित करते हैं। 112 पृष्ठ के इस संग्रह का मूल्य बहुत ही कम, मात्र 20 रुपये है। इलाहाबाद के अंजुमन प्रकाशन ने काफी कम समय में साहित्य सुलभ संस्करण जैसी साहित्यिक पुस्तकों का प्रकाशन कर के प्रकाशन जगत में अपनी एक सशक्त उपस्थिति दर्ज कराई है। हिंदी साहित्य के पाठकों के लिए शुरु की गयी यह एक अच्छी शुरुआत है। अच्छे साहित्य को चाहने वालों को इस युवा कवि की कविताओं का आस्वादन और स्वागत अवश्य करना चाहिए।

कहानी

भरोसा टूटने का दुःख

डॉ0 सुजाता चौधरी
भागलपुर
9431871677

जनक राय का गुस्सा सातवें आसमान पर था। जिसके लिए चोरी करो, वही कहे चोरा। उनका मन तो किया खाल खीच लें उस दो टके की औरत की, स्साली वेश्या! भगवान ने ही वेश्या बनाया है तो कहाँ से बनेगी इज्जत वाली। उस ऋषि ने भी कुतिया को बना दिया राजकुमारी पर क्या हुआ, छोड़ी क्या उसने कुतियों वाली आदत.....? यह भी कहाँ से बनेगी सती–सावित्री, पानी पी–पीकर कोसने से भी गुस्सा कम होने का नाम नहीं ले रहा था।

वैसे देखा जाए तो जनक राय का गुस्सा बेवजह नहीं था। गुस्साने वाली बात तो थी।

एक सबेरे से ही जनक राय ने मछली पकड़ने की शुरुआत की। पोखर बड़ा था, किन्तु उसके हिस्सेदारों की भी संख्या कम नहीं थी। जितने हिस्सेदार थे वे बाल बच्चों सहित आकर जम गए, पोखर के पास। सबके हाथ में मछली को पकड़ने वाली वंशी थी और वंशी के आगे मछली को आकर्षित करने के लिए रंग बिरंगी चीजें बांध रखी थीं।

भीड़ इतनी अधिक बढ़ गई कि जनक राय का पारा चढ़ गया। पारा चढ़ने का भी कारण था। पोखर के पचास प्रतिशत के मालिक अकेले जनक राय थे और उधर पचास प्रतिशत में पचास परिवार। पचास परिवार ने कभी भी परिवार नियोजन का सहारा नहीं लिया, उनके बाप दादाओं ने भी नहीं लिया था, तभी तो एक से पचास हो गए और अपने पुरुखों की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए यह पचासों परिवार भी भगवान की कृपा का लाभ उठाते हुए अपने घर आंगन से लेकर बिस्तरे तक को बाल–गोपाल से भर दिया।

परिवार नियोजन का सहारा तो शायद जनक राय के पुरुखों ने भी नहीं लिया था और न जनक राय ने ही लिया पर भगवान की कृपा ही कुछ कम हुई या यों भी कह सकते हैं जनक राय के परिवार में लक्ष्मी की कृपा बनाए रखने के लिए भगवान ने ही परिवार नियोजन की व्यवस्था कर दी थी। पीढ़ी दर पीढ़ी एक बेटा की ही परम्परा चलती रही। बेटियाँ होती रहीं, परन्तु वे बँटवारा करके धन तो लेती नहीं। उल्टे विदाई के वक्त अपने हाथ से धान के लावे को पिता के घर में छींटते जाती हैं ताकि धन–धान्य से बाबुल का घर भरा रहे।

जनक राय की भी बेटियाँ विदा होकर चली गईं, मगर बाबुल के घर में धन–धान्य बिखेरती गईं।

वैसे जनक राय है शौकीन व्यक्ति। सिर्फ शौकीन कहना उसकी तौहीन होगी। वैसे भी कम नहीं हैं। बेटी की शादी में धूम–धाम कम नहीं किया। सिखानीचक गाँव में उसके पहले किसी शादी में टेबुल–कुर्सी नहीं लगी थी खाना खाने के लिए। पहली बार जनक राय ने ही अपनी बेटी की शादी में टेबुल–कुर्सी लगवाये थे। गाँव वालों का अचम्भित होना स्वाभाविक था।

पर यह अंतिम अचम्भा नहीं था। शादी वाले दिन जब सवेरे–सवेरे शहनाई की आवाज से लोगों की नींद टूटी, तो कामेश्वर राय चौंके..''इतनी मधुर शहनाई वाले बिस्मिल्ला खाँ तो नहीं है?''

कामेश्वर राय पिछले दस वर्षों से कलकत्ता में रह रहे थे और नौकरी भी एचएमबी में करते थे। म्यूजिक की समझ रखने का दावा भी करते थे और समझ भी थी। चप्पल पहना और अपनी लुंगी संभाली। लपककर पहुँचे जनक राय के बंगले पर तो देखा साक्षात बिस्मिल्ला खाँ, शहनाई बजा रहे हैं, आँखें मुंदी हुई थीं जैसे साधना में लीन कोई साधक।

आखिर बिस्मिल्ला खाँ यहाँ आए कैसे? शादी–विवाह के इतने छोटे से समारोह में और इतने छोटे से इस गाँव में, बिहार का इंटीरियर क्षेत्र? माथा ठनका कामेश्वर राय का। पर इस बात का जवाब तो जनक राय के पास ही था। वही बताएँ तो असली बात पता चले।

सबको पता था जनक राय ने आजतक किसी बात का सही जवाब दिया है जो आज देंगे, पर पूछने से बाज नहीं आए। पूछ ही लिए कामेश्वर राय। जनक राय ने सूफियाना जवाब दिया– अरे यार, आम खा न, पेड़ क्यों गिन रहा है? गाँव में बिस्मिल्ला खाँ आए हैं। जी भर सुन, तृप्त हो जा। अब आगे तो कोई इन्हें लाने से रहा।

कामेश्वर राय पहले भी रिकार्डिंग के दौरान एचएमबी कम्पनी की बिल्डिंग में बिस्मिल्ला खाँ से मिल चुके थे। राय जी ने कोशिश की बिस्मिल्ला खाँ से भी जानने की– आखिर यहाँ आए तो कैसे आए? पर वे ठहरे संत आदमी, मौज में थे ''जो खुदा की इच्छा, अच्छा लग रहा है, बेटी की शादी है .....।''

बाद में पता चला कि बिस्मिल्ला खाँ को ठग कर ले आए थे। उनसे जनकराय ने यही कहा था कि बिहार में बेगूसराय नामक जगह पर एक कला केन्द्र है जो प्रत्येक साल संगीत समारोह करता है, वहीं चलना है। कला का पुजारी कला केन्द्र न जाए ये कैसे हो सकता था।

बिस्मिल्ला खाँ आ गए। उनकी खासियत थी, गंगा–युमना संस्कृति की उपज थे वे। प्रत्येक दिन प्रातःकाल बाबा विश्वनाथ को शहनाई सुनाने वाले खाँ साहब ने न कोई नाराजगी जताई और न पैसे के लिए हो–हल्ला ही मचाया; उल्टे कहा कि शादी में आया हूँ तो शहनाई बजाकर ही जाऊँगा।

तो इतने चालाक थे जनक राय। पोखर पर आज सवेरे–सवेरे इतने लोगों को हुजूम देख माथा गरम तो खूब हुआ, किन्तु गोपाल की बातों से तुरंत शान्त भी हो गए। गोपाल ने कहा–

'काका जी इतने लोगों के आने से क्या होगा? हिस्सा तो आपका आधा ही रहेगा। सब मिलकर मछली पकड़ेंगे तो काम जल्दी समाप्त हो जाएगा। सभी मछली एक जगह जमा हो जाएगी। फिर आधा आप ले लेंगे और आधे में हम लोग बाँट लेंगे।'

इसमें जनक राय को कोई आपत्ति नहीं थी। अपने भी परिवार सहित लग गए। बेटा तो एक ही था। ये जितने ही तेज तर्रार वो बेचारा उतना ही भोला–भाला। फिर भी पिता के साथ उसने भी वंशी पकड़ी। फिर क्या था तमाशा शुरु हो गया। हाँ तमाशा ही, जब भी गाँव में मछली पकड़ने की शुरुआत होती सब लोग अपने–अपने घरों से तमाशा देखने चले आते। बच्चे–बूढ़े सभी आ जाते, हाँ सिर्फ स्त्रियाँ नहीं आतीं। स्त्रियों के कानों में बस आवाज जाती। जब बड़ी सी मछली किसी के जाल में फँसती तो कुछ देर तक तो मछली पकड़ने वाला और भीड़ दोनों अपनी सांसें रोक लेते, किन्तु मछली के पानी से ऊपर आते ही भीड़ चिल्लाती। स्त्रियाँ समझ जाती, बड़ी मछली फँसी है। वे भी खुश हो लेतीं।

आठ बज गए मछली पकड़ने, तौलने और बँटवारा होने में। गाँव में आठ बजे का मतलब घनघोर रात्रि। मछली को देखकर जनकराय का मन कुछ और गुनने लगा। बड़ी–बड़ी मछली को अपने हाथों अलग करके एक दूसरी टोकरी में डालने लगे।

चहती दाई चिहुँकी। जनक राय की मुँह लगी दाई थी। उस पर कृपा भी दृष्टि भी रखते थे वे। कभी–कभी उसकी अदा पर रीझ कर मेहरवानियाँ भी कर देते थे। ''मालिक बड़ी मछली किसके लिए अलग कर रहे हैं? हम भी इधर खड़े हैं, ध्यान दीजिएगा''। चहती के पति को मछली बहुत पसंद थी, वो भी बड़ी मछली, बाजार में इतनी महँगी मिलती है कि खरीदना मुश्किल ही है। पति खुश हो जाएगा, जब बड़ी मछली लेकर जाएगी। मालिक को खुश करने के लिए उसने रुपल्ली मुस्कान फेंकी।

जनक राय ने कोई उत्तर नहीं दिया। वे गंभीर थे! अभी उनके दिमाग में मुमताज़ नाच रही थी। कैसे मुमताज़ तक मछली पहुँचे? लेकिन ऐसा कोई संयोग नहीं मिला। जनकराय अंदर से बाहर और बाहर से अंदर। इधर मछली भी दम तोड़ रही थी। वे निराश होने को तैयार नहीं थे। वैसे भी प्रेम कहाँ निराश होने देता है। निराशा की अँधेरी में आशा की किरण दिख ही जाती है। जनक राय को भी दिख गई। अपना भोला बेटा! जिसे अभी–अभी नई साईकिल दी थीं। उस समय गाँव में केवल अच्छी नौकरी करने वाले के पास ही साइकिल होती थी, वो भी बहुत कम। पढ़ने वाले बच्चों को कहाँ साइकिल! किन्तु जनक राय ने अपने बेटे को दी थी। उनका इतना तो हक बनता ही था।

''बेटा तू अभी शहर जा सकता है? अपनी नई साइकिल से?''

बेटा बाप की दाँव में फंस गया, फंसना ही था।

''क्यों नहीं? पैंतालीस मिनट जाने में, पैंतालीस मिनट आने में, कुल मिलाकर डेढ़ घंटे लगेंगे, पर जाना कहाँ है'' ? मिथिलेश ने कहा।

''मुमताज के घर मछली पहुँचानी है, इतनी मछलियाँ हैं, बेकार सड़ेंगी। कल बासी भी हो जाएगीं। बरबाद करने से तो अच्छा है, वह भी खा लेगी।'' परोपकारिता का पाठ अपने बेटे को पढ़ाया।

सुमित्रा देवी कुनमुनाई, किन्तु हिम्मत कहाँ थी जो विरोध करती। शुरु से ही दब्बू थी। उनका मुँह जनक राय के पास खुलता ही नहीं था। बुद–बुदा कर रह गई.... मछली क्या बरबाद होगी? बीस बीघा खेत उस मुमताज के पीछे उड़ा दिए और अभी मछली बचा रहे हैं। इतनी रात में उस पतुरिया के फेर में अपने इकलौते बेटे को मछली लेकर भेज रहे हैं। रात बियार में कुछ हो न जाए? कोई समझाए तो इन्हें, पर कौन समझाता? मिथिलेश ने साइकिल के कैरियर में डलिया बाँधी और चल दिया शहर।

एकदम डेढ़ घंटे में पहुँच गया वापस गाँव, एक मिनट इधर से उधर नहीं।

सुमित्रा देवी निश्चिन्त हुई। जनक राय का मन हुलसा, मुमताज मछली खाएगी और उसे याद करेगी। इतना ही नहीं उसके पेट में मछली जाकर उधम मचाकर मेरे प्रति उसके प्यार को और परवान चढ़ायेगी । किन्तु यह क्या? मिथिलेश की साइकिल के कैरियर में मछली तो बंधी ही हुई है।

जनक राय गरजे– ''कहाँ गया था और कहाँ से लौट आए? नहीं जाना था तो यह नाटक क्यों? सब तुम्हारी माँ का नाटक है... सब समझता हूँ।''

''बाबूजी मैं गया था, पूरा मुहल्ला शांत था। कुछ सिपाही इधर–उधर घूम रहे थे। मुझे पकड़ भी लिया– इतनी रात में मछली लेकर कहाँ घूम रहा है? मैंने मुमताज़ का नाम बताया, तो छोड़ा। बोला–साला, यार है उसका। ठीक है, मछली पहुँचा दे। ड्यूटी के बाद हम भी आते हैं मछली खाने।''

''दौड़ता हुआ मुमताज़ के यहाँ पहुँचा, तो उसके कमरे का दरवाजा अंदर से बंद था। मैंने दरवाजे को बहुत पीटा, उसने खोला नहीं। पता नहीं, सुना या नहीं? हाँ, उसके दरवाजे के आगे एक जोड़ा मर्दाना जूता रखा था।''

एक ही साँस में अपनी बात कहकर मिथिलेश ने राहत की साँस ली। वह शांत हो गया, किन्तु जनक राय अशांत हो गए। दो मिनट इधर से उधर किए, फिर अपने सिर को झटका। आज इस पार या उस पार। देख ही लेता हूँ कि सच क्या है? मिथिलेश तो भोला है, झूट नहीं बोलेगा, किन्तु क्या ठिकाना अपनी माँ की सोहबत में झूठ बोल रहा हो। वैसे भी सौतिया डाह औरत को क्या न कराए। समय गँवाना ठीक नहीं। मिथिलेश को पुकारा– ''अभी वापस शहर चल सकते हो मुझे अपनी साइकिल पर चढ़ा कर?''

''जरुर, मछली लूँ कि छोड़ूँ; क्योंकि कैरियर पर है?'' भोलेपन से मिथिलेश ने कहा।

''मछली उतार, उसे आज मछली नहीं कुछ और खिलाऊँगा।'' जनक राय ने दाँत पीसा। मिथिलेश हुलसा। भोला जरुर था किन्तु माँ के आँसू को देखता था और समझता भी था।

छुपे रूपे से सुमित्रा देवी चाहती भी थी और उपाय भी करती थी कि मुमताज़ उसकी जिंदगी से चली जाए। तंत्र–मंत्र, गंडा, ताबीज सक कर चुकी थी, किन्तु अभी मिथिलेश को इतनी रात में फिर से साइकिल चलाकर शहर जाने की बात से दुःखी हो गई। उसने पहली बार देखा अपने पति को मुमताज़ पर बिगड़ते हुए। पर इतनी बड़ी प्रसन्नता मिलने की आशा से भी प्रसन्न नहीं हो पा रही थी और न उत्साहित। लेकिन उससे क्या, लंबे–चौड़े, मोटे–ताजे जनक राय पतले दुबले मिथिलेश की साइकिल पर बैठकर शहर चल दिए।

प्रेम में डूबे थे तो मछली भेजी थी, स्वयं नही गए थे। अभी तो क्रोध और नफरत में जले जा रहे थे। उसी से अपना जाना जरुरी था। क्रोध और नफरत हमेशा प्रेम पर भारी पड़ते हैं।

सांय–सांय की आवाज हो रही थी। रास्ता एकदम सुनसान, रास्ते में एक व्यक्ति भी नहीं मिला, न कदमों की आहट न मोटर गाड़ी की पी–पी और न तांगे की खट–खट, बस कभी–कभी पेड़ के पत्ते की खड़खड़ाने की आवाज जरूर सुनाई दे रही थी। हाँ जनक राय के मन में विचारों की आँधी जरूर चल रही थी– ''जमीन्दारों की तरह भले ही मैंने इस मुमताज़ के लिए अलग से कोठी नहीं बनवा दी, इतनी औकात ही नहीं मेरी, पर इस पर कम धन नहीं लुटाया! बीस बीघा जमीन इस पर न्यौछावर कर दिये। क्या नहीं दिया गहने..... कपड़े..... से लेकर महँगे–महँगे इत्र.....। हमेशा कहती थी मुझसे, इस रेड लाइट एरिया से हटा दीजिए। साली सब नाटक था उसका। वैसे भी उसे कहाँ लाता? गाँव में तो ऐसे ही हजार दुश्मन पहले से हैं। बगीची में, सोचा था रखने के लिए, किन्तु वहाँ अकेले में भूत पकड़ता है..... नौटंकी करती है..... लेकिन इसने वादा किया था हमेशा मेरी बनकर रहेगी, जिंदगी भर की वफादारी की कसमें खाई थीं।''

विचारों में झंझावात चलना समाप्त तो नहीं हुआ, हाँ, रास्ता समाप्त हो गया, साइकिल मुमताज़ के कमरे के आगे खड़ी हो गई।

''तू यहीं रुक, मैं आता हूँ।'' धोती ठीक करते हुए जनक राय अन्दर गए। जिनती शक्ति थी उससे ज्यादा जोर से दरवाजा पीटने लगे। लगा दरवाजा चरमरा कर टूट जाता, किन्तु टूटने के पहले ही अंदर से चिटकिनी खुल गई। अंदर से काले कोट में एक आदमी निकला। वकील था या रेलवे टिकट कलेक्टर! ये तो राम जाने; क्योंकि चेहरा उसने ढँक रखा था। जनक राय ने आव देखा न ताव खींचकर दिये दस चाँटे और न जाने कितने घूसे। वकील साहब थे या टी.टी साहब समझा पुलिस का छापा पड़ा है, जान बचाकर भागा।

अब सामने थी मुमताज़!

मुमताज़ को न मारा न पीटा। बस मुँह से ढेर सारा थूक बनाया और जोर से खींचकर उसके मुँह पर फेंक दिया और नफरत से भरकर मुँह को टेढ़ा करके बोले– ''साली रंडी! आज तक कभी किसी की हुई है? और हो भी नहीं सकती। उससे वफादारी की आशा रखने वाला ही उल्लू है।''

मुमताज़ ने दुपट्टे से चेहरा पोछते हुए कहा– ''जनाब, आप अपनी पत्नी से वफादार तो हैं नहीं। आपके मुँह से शोभा नहीं देती वफादारी की बातें। मैं तो जो कुछ भी करती हूँ अपने पेट और अपने बच्चे की भूख मिटाने के लिए और आप..... पत्नी घर में रोती है.... घर की दाई तक पर तो निगाहें गड़ाये रहते हो और बाते करते हो वफादारी की। शोभा नहीं देती, ऐसी बातें आपके मुख से।''

जनक राय के पास जबाव तो था नहीं। इससे क्रोध और बढ़ गया। जब व्यक्ति के पास किसी बात का उत्तर नहीं होता तो उसके पास अपने बाल खींचने के सिवा क्या विकल्प बचता है। फिर भी चिल्लाये– ''साली..... रंडी कहीं की..... जिसके लिए चोरी करो वहीं कहे चोर.....।''

मिथिलेश को बड़ी जोर से हँसी आई, पर किसी तरह हँसी दबाते हुए उसने सोचा, अब माँ के पास जाकर ही हँसेगा। दोनों माँ–बेटा मिलकर हँसेंगे। अपनी माँ की खुशी की कल्पना करके मिथिलेश की थकान जाती रही। एकदम तरोताजा महसूस करने लगा वह। जनक राय भी लपक कर साइकिल पर बैठ गए। अब रुकना फिजूल था। आखिर उनका भी भरोसा टूटा था– क्या करते रुककर।

गजल

शुभम श्रीवास्तव 'ओम'
बेलवन, पहाड़ा, मीरजापुर, उत्तरप्रदेश
मो.– 07668788189

आपने मुझको जो यूँ रूसवा किया है।
शुक्रिया! जो भी किया, अच्छा किया है

आपके अश्कों को हमने भी सहा है।
और कहते हो–बड़ा धोका किया है।

भूख को कबतक वो परदे में छुपाती?
आज हालातों से समझौता किया है

पीठ पर पर्वत के जितना बोझ लेकिन
देखिये जज्बा कि सिर उँचा किया है

आपकी सद्भावनाएँ हैं हमेशा।
वक्त कब, किसके लिए ठहरा किया है

झोपड़ी से सिसयिाँ फिर आने लगी हैं।
आज लगता है काफिर फाँका किया है।

कविता

एक नये व्याकरण की जीत

श्वेता भारती
भागलपुर

यह जीत है
सिद्धान्तों की, मूल्यों की, आस्थाओं की
विघटित होते जीवन–मूल्यों के दौर में
स्खलित होती राजनीतिक–शुचिता के युग में
आत्ममुग्धता के इस भयंकर वातावरण में
तालाश थी हमें एक नये व्याकरण की,
नयी भाषा और शब्दावली की!

हमारी यह खोज, यह तालाश समाप्त हुई
मुझमें, उसमें और अंततः 'आप' में!
निश्चय ही, यह जीत है
हमारी, उसकी और आपकी!

दौर आता है इतिहास में कभी–कभी
जब अंधकार सघन से सघनतर हो जाता है
मूल्य अपघटित होते जाते हैं
निराशा गहन से गहनतर होती जाती है
ऐसे ही दौर में उदित होता है सूर्य
और आशाओं–आस्थाओं को मिलता है जीवनदान!

वह जीवनदान हमें फिर मिला है
हमारी आस्थाओं को बल मिला है
और हमारे सपनों को पंख!
हमने तुम्हें सिंहासन दिया है
इसकी तुम लाज रखना,
इसका तुम सम्मान करना
क्योंकि यह जीत है– हमारी, उसकी और 'आप' की!

शेर सा मैं भी गरजना जानता हूँ

डॉ0 अश्विनी

स्वत्व वो अधिकार छीनना जानता हूँ
धूल को चन्दन बनाना चाहता हूँ
माँ अगर तु साथ मेरे हो सदा
दुश्मनों को तौलना भी जानता हूँ
कौन है जो रोक भी मुझको सकेगा,
सामने मेरे कोई क्या टिक सकेगा
बाजूओं में कूबतें फिर है बुलन्द हौसले भी
शेर सा मैं भी गरजना जानता हूँ
बेवशी की क्यों लगी जंजीर भी है,
हाथ में मेरे सदा शमसीर भी है
जोश वो जज्बे जवानों की कसम
दुश्मनों को चीरना भी जानता हूँ।
यह जमीं तो जिन्दगी ईमान भी है,
हर यहाँ इन्सान तो भगवान भी है,
तुम मुझे आँखें छोड़ दो भी,
हस्तियाँ तेरी मिटाना जानता हूँ।

संभाव्य दिवस समारोह–2015

सम्मानित किये जाने वाले रचनाकारों की सूचि :–

कविता	:	**रामधारी सिंह दिनकर स्मृति सम्मान** डॉ0 अलका अग्रवाल, श्री सोमकृष्ण, श्री आमोद कुमार मिश्र श्री धनंजय मिश्र, श्रीमती संयुक्ता भारती
कहानी	:	**फणीश्वर नाथ रेणु स्मृति सम्मान** श्रीमती प्रतिभा राजहंस, श्री पी.एन. जायसवाल श्री धर्मेन्द्र कुसुम, श्री अनिरुद्ध प्रसाद विमल
गीत	:	**गोपाल सिंह नेपाली स्मृति सम्मान** श्री राज कुमार
गजल	:	**दुष्यन्त कुमार स्मृति सम्मान** श्री अभिनव अरुण, डॉ0 मनाजीर आशिफ हरगानवी, श्री अशोक मिज़ाज श्री खुशीलाल मंजर, श्री विष्णु प्र0 विकल
समीक्षा	:	**डॉ0 विजयदेव नारायण साही स्मृति सम्मान** डॉ0 बहादुर मिश्र, डॉ0 योगेन्द्र, डॉ0 सुजाता चौधरी
आलेख	:	**आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी स्मृति सम्मान** डॉ0 सुनील कुमार परीट, डॉ0 अमरेन्द्र
लघुकथा	:	**डॉ0 अनूप लाल मंडल स्मृति सम्मान** श्री अनुज प्रभात
हास्यव्यंग	:	**अली अलवर्ट कृष्ण स्मृति सम्मान** श्री शंकर दास, श्री हीरा प्रसाद हरेन्द्र
नाटककार	:	**हरिकुंज स्मृति सम्मान** श्री पी.एन. जायसवाल
अंगिका भाषा साहित्य	:	**डॉ0 डोमन साहु स्मृति सम्मान** डॉ0 तेजनारायण कुशवाहा
कला संस्कृति	:	**चक्रवर्ती देवी स्मृति सम्मान** श्री मनोज पंडित

दिनांक : 11 जनवरी 2015 (रविवार)
स्थान : प्रशाल, मोक्षदा बालिका इंटर स्कूल
भागलपुर (बिहार)

संस्थापक
संभाव्य हिन्दी त्रैमासिक

कविता

इंतजार रब का

सीमा 'असीम'
बरैली, उत्तर प्रदेश
मो0 : 9557929365

1.
मंदिर की लाइन में खड़ी करती रही इंतजार देर तक
अपने रब को पूजने के लिए
हाथों में पूजा की थाली पकड़े
थकन छाती रही
चेहरे का मीठापन घुला
खारा खारा सा हो उठा सबकुछ
घंटियों की घनन–घनन से मिट जाता मन का गुब्बार
एक लोटा जल शिवलिंग पर चढ़ाने को
इतना लम्बा इंतजार
मन में ही बसी है तेरी मूरत
दिन रात पूजती हूँ तुझे ही
क्यों करुँ फिर इंतजार
जब मन में ही बसते हैं मेरे रब
रहते हैं मेरे आसपास!!

2.

एक मौन तुम्हारा

एक मौन तुम्हारा
मेरी वाचालता
अनवरत चलती रहे
श्वांस रहने तक
क्योंकि मुझे पसंद है
बोलना, बात करना
नहीं ऐसा हरगिज़ नहीं है
बल्कि जब तुम कर देते हो
अनसुना मुझे
तो तब तक कहती रहना चाहती हूँ
जब तक तुम तोड़ न दो
अपनी ख़ामोशी, अपना मौन
फिर थिरक उठेंगे शब्द
खनकते हुए से
अभिव्यक्ति बन
रंग बिखेर देंगे
जीवन में
देखो दूर कहीं घंटियों की आवाज आई
हाँ, शायद मौन टूटा है!!

पुरानी डायरी

अनुपमा सरकार
मायापुरी, नई दिल्ली
मो0 : 09891441966

खोले बैठी हूँ आज वो पुरानी डायरी
जिसके कोरे सफहों पर कुछ नज़्में लिखी थीं

खो गई थी कुछ रोज़ से
पूरा बुकरैक छान मारा था मैंने
मिल ही नहीं रही थी

आज अचानक टेबल की ड्रॉर में मिली
शायद कभी वहाँ रख भूल गई थी

मैं भी न, चीज़ों को ढूंढती ही गलत जगह हूँ
या फिर खोजते–खोजते खुद ही खो जाती हूँ कहीं

खैर उन पीले पड़ते पन्नों को पलटा तो
कुछ नज़्में बोल उठीं
नाराज़ हैं मुझसे
अधूरी छोड़ दी थीं लाइनें ही नहीं
लफ़्ज़ों के बीचोंबीच भी जगह है बाकी
शायद कोई ख्याल लिखते–लिखते छूट गया था
या मैंने ही गुंजाईशें बहुत छोड़ रखी थीं

अब भर देना है इन सूराखों को
एयर टाईट कर देनी है ये डायरी
और सहेजकर महफूज़ रख देनी है कहीं
बहुत हुई आवाजाही।

2.

आगाज़

लहराते बादल सकुचाता सूरज
मुस्काती पत्तियां खिलती कलियां
सजग कलम चंचल शब्द
बुनने चली ख्वाब नया
अहसास जगे अवसाद थमे
सुन! सुबह का आगाज़ हुआ
सुंदर शुरुआत स्नेहिल भाव
क्यों न रचें इतिहास नया !!

लघुशोध

हिन्दी की विशिष्ट संबोधन शब्दावली: एक सम्यक् अध्ययन

छोटेलाल गुप्ता
शोध छात्र
जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)
मो0 : 9085210732

हिन्दी की विशिष्ट संबोधन शब्दावली किसी समाज के व्यक्तियों के मध्य, विचारों के परस्पर आदान–प्रदान का एक महत्वपूर्ण साधन है। किसी भी संप्रेषण की शुरुआत अचानक नहीं होती, यानी संप्रेषण शुरु करने से पहले संप्रेषण अपने लक्ष्य और स्वयं के मध्य एक सेतु बनाता है। भाविक संप्रेषक के लिए जिन शब्दों से हम किसी व्यक्ति अथवा व्यक्ति–समूह के साथ संवाद, संभाषण अथवा विचार–संप्रेषण की शुरुआत करते हैं, उन्हें संबोधन कहते हैं। प्रत्येक समाज में संबोधन की अपनी विशिष्ट शब्दावली होती है, जिसके माध्यम से उस समाज की मनःरचना और संबोधन–कर्ता तथा श्रोता की सामाजिक स्थिति व उनके अंतर–संबंधों का विश्लेषण किया जा सकता है। प्रस्तुत लेख में हम मानव–व्यवहार के कतिपय विभिन्न क्षेत्रों और हिन्दी–भाषी समाज में उन क्षेत्रों व स्थितियों में प्रयुक्त विशिष्ट संबोधन शब्दावली पर विचार करेंगे।

विशिष्ट सामाजिक संदर्भों में संबोधन : विशिष्ट वातावरण और परिस्थिति के अपने संबोधन होते हैं, जैसे शहरी छात्र अपने पुरुष शिक्षकों को 'सर' तथा महिला शिक्षकों को 'मैडम' या 'मैम' कहते हैं। गाँव में हम अपने गुरुजी को मास्साहब, मुंशीजी कहते थे। अन्य जातियों वाले लोग गाँव के पंडितजी को भी गुरुजी कहते थे, चाहे वे गुरुजी बिल्कुल निरक्षर ही क्यों न हों। यही हाल ठाकुर यानी साहब ओर कायस्थ लोगों यानी लालाजी का था। ये जाति–सूचक संबोधन थे, जो तथाकथित बड़ी जातियों के लोगों को ही मयस्सर थे। दिल्ली में अल्प–शिक्षित लोग यह मानते हैं कि हर संबोधन के साथ जी जोड़ देने वे वह आदर–सूचक हो जाता है। इसीलिए उधर के बहुत–से लोग अंकलजी, आंटीजी, सरजी और मैडमजी बोलते सुने जाते हैं। मूल रुप से पंजाबी–भाषी लोगों में यह प्रवृत्ति अधिक दिखती है। बल्कि वे तो बेटाजी संबोधन भी करते हैं। बेटा संबोधन केवल लड़कों के लिए रुढ़ हो, ऐसा नहीं है। पप्पु, मुन्ना, बेटू, बिटू आदि नाम दीये जाते हैं, जो संबोधन के लिए ही होते हैं। इन्हें बुलाने का नाम कहा जाता है, जिसे भाषा–शास्त्रीय अथवा व्याकरणिक शब्दावली में संबोधन–परक संज्ञा कहा जा सकता है। इनके असली नाम प्रमाण–पत्रों में दर्ज होते हैं।

जब हम किसी का न नाम जानते हैं, न ही उससे कोई परिचय होता है, लेकिन उसका ध्यान खींचना या उससे कुछ बातें करनी जरुरी हो जाती है, तो हम हिन्दी में क्षमा करें, माफ कीजिए या अंग्रेजी में एक्स्क्यूज मी कहते हैं। कम पढ़े–लिखे लोग इनमें से कुछ भी कहकर अपने तरीके से संबोधित कर लेते हैं, जैसे– सुनना भाई, अरे भाई साब, अरे बैनजी, अरे काका, चाचाजी, ताऊ जी, माँजी, माताजी आदि।

भारत के किसी भी प्रान्त में चले जाइए, संबोधन के लिए किसी पारिवारिक रिश्ते का बोध कराने वाले शब्द का इस्तेमाल सबसे अधिक होता है। जैसे तमिल में अन्ना, अम्मा, तंबी, अक्का आदि संबोधन आम हैं। बांगला, उड़िया, असमिया में दादा, भाई, दादी मुनी, दादा मुनी आदि शब्दों का इस्तेमाल संबोधन के लिए आम तौर पर होता है। हिन्दी प्रान्तों में भी यही स्थिति है। इसी प्रकार गुजरात में नाना भाई, मोटा बेन, काका आदि संबोधन खूब चलते हैं। पंजाबी लोग प्रा. जी. प्रावाँ, बहणजी, बेब्बे आदि संबंध–सूचक संबोधनों का इस्तेमाल करते हैं। जातिसूचक सरनेम का उल्लेख करके संबोधित करने की प्रवृत्ति भी भारत के सभी राज्यों में देखने में आती है, जैसे शर्माजी, गुप्ताजी, गांगुली दा, रेड्डी गारु, तीरु वेणुगोपाल, राधा अम्मल आदि। संबंध– परक संबोधन आयु की सीमाओं का अतिक्रमण करते दिखते हैं, जैसे लतादी, लता ताई ध्यानचंद दद्दा, चाचा नेहरु, बापू, बा ये विभूतियाँ संबोधन करने वालों से चाहे जितनी भी वयोवृद्ध हो किन्तु संबोधन तो वहीं रहेंगे। आत्मीयता सूचक इन संबोधन का प्रचलन शायद दुनिया के इस क्षेत्र में ही अधिक है और आज से नहीं, सदियों से रहा है। इसीलिए इन्हें सुनकर हमें हैरत नहीं होती, किन्तु पश्चिम के लोग जब इन संबोधनों को सुनते हैं, तो भौंचक्के रह जाते हैं। इसीलिए 27 सितंबर 1883 को शिकागो की वर्ल्ड रिलीजन पार्लियामेंट में जब स्वामी विवेकानन्द ने श्रोताओं को लेडीज एंड जेंटलमेन कहकर संबोधित करने के बजाय भाइयों और बहनो कहा, तो श्रोताओं के आश्चर्य और आनन्द की सीमा नहीं रही। उन्हें यह उम्मीद ही नहीं थी कि सगे भाई–बंधुओं से इतर दुनिया के किसी दूसरे व्यक्ति को ऐसे आत्मीय संबोधन से पुकारा जा सकता है। आत्मीयतापूर्ण संबोधन भारतीय उप–महाद्वीप की अपनी अमूल्य निधि हैं। कहीं न कहीं वे हमें वसुधैव कुटुंबकम् की संकल्पना से जुड़ते हैं।

सामाजिक जीवन में जब रक्त–संबंध, परिवारिक रिश्ते, आत्मीयतापूर्ण संबंधों की प्रतिष्ठा नहीं हुई होती, किन्तु वक्ता अपने श्रोता से जुड़ा हुआ अनुभव करता है और उससे अपने संबंध को परिभाषित करने की प्रक्रिया में होता है, या परिभाषित करना नहीं

चाहता, किन्तु फिर भी अनाम–सा नजदीकी संबंध बनाए रखना चाहता है, तब वह जी कहकर काम चलाता है। जी सुनिए, जी कहिए, जी जरा वो चीज दिखाइए। ऐसे वार्तालाप प्रायः सुनने में आते हैं। बहुत से हिन्दी–भाषी घरों में पत्नियाँ अपने पति को जी, एजी पुकार कर संबोधित करते हुए पूरा जीवन बिता देती है। यह स्थिति केवल हिन्दी समाज में ही नहीं, बल्कि अन्य भाषाओं में भी है, जैसे तेलुगु में एमडी यानी क्याजी! पहले अपने यहाँ पति–पत्नी एक–दूसरे को नाम लेकर नहीं पुकारते थे, तब इसी प्रकार महिलाओं को एजी, ओजी, सुनती हो, बच्चों की अम्मां, राजू की मम्मी, दुलहिन, बड़ी बहू, छोटी बहू आदि कहकर संबोधित किया जाता था। पुरुषों को राजू के बाबूजी, गुड्डू के पापा आदि कहकर पुकारा जाता था। संबंधों में बहुत रुमानिया होने पर जानम, जानू, डार्लिंग, जानेमन आदि कहकर संबोधन करने के प्रकरण भी देखने–सुनने में आते हैं।

कभी अपने नजदीकी, बेहद अंतरंग और कम उम्र लोगों के प्रति बहुत प्रेम और लाड़–दुलार की अभिव्यक्ति के लिए अपशब्दों और गलियों के माध्यम से संबोधन के उदाहरण भी देखे जा सकते हैं। बैंडिट क्वीन में पुरुष डाकू अपनी महिला संगिनी से कहता है– ''साली बहुत नखरे करती है।'' पंजाबी लोगों द्वारा प्यार में श्रोताओं को 'ओ खोत्तया, चल टुर जा यहाँ से, या खोत्ते दी औलाद, आदि कहकर संबोधित करते सुना जा सकता है।

धार्मिक संदर्भो में संबोधन :– जब भगवान को संबोधित करना हो तो हिन्दी भाषी प्रायः 'हे' शब्द का इस्तेमाल करते हैं, जैसे 'हे राम! हे माता! हे हनुमानजी! धर्म–गुरुओं को भी 'हे गुरुदेव!' कहकर संबोधित किया जाता है। यह परंपरा संस्कृत से हिन्दी में आई है। इसी प्रकार उर्दू में 'ऐ मालिक, ऐ मेरे खुदावंद आदि कहकर संबोधित किया जाता है। ऐ मेरे वतन के लोगों, या 'ऐ मेरी जोहराजबी, ऐ गुलवदन। उर्दू में कभी–कभी, ऐ मेरे सरकार 'ऐ' में अपनी लघुता और श्रोता की गुरुता या प्रभुता का भाव निहित होता है। कभी आदर देने या मनुहार के लिए भी ऐ संबोधन का इस्तेमाल, ऐ हुजूर' आदि संबोधन सुनने को मिल जाते हैं। इसके विपरीत है 'रे' संबोधन, जो श्रोता को छोटेपन, उसकी अज्ञानता आदि का अहसास कराने के लिए किया जाता है, जैसे 'क्यों रे, तेरी इतनी मजाल, रे गंधी मति अंध तू, इतर दिखावत काहि' (बिहारी)। इन संबोधनों में श्रोता की क्षुद्रता और अल्पज्ञता को उजागर किया गया है। कभी–कभी बहुत निकटता होने पर भी 'रे' संबोधन का इस्तेमाल कर लिया जाता है, जैसे 'हाय रे, मेरे भगवान।'

सड़क किनारे या मन्दिर के आगे बैठा भिखारी आबाल–वृद्ध, सबको बाबा कहकर संबोधित करता है– 'दे–दे बाबा! भगवान के नाम पर... दे–दे!' उसके लिए हर व्यक्ति बाबा है। वहीं रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि बिहारी और केशव के लिए बाबा किसी बूढ़े व्यक्ति के लिए किया जाने वाला आदर–सूचक संबोधन है– 'चंद्रवदन मृगलोचनी, मोते बाबा कहि–कहि जायँ'। बाबा कहने वाला भिखारी किसी के लिए आदर–सूचक क्रिया दीजिए का प्रयोग नहीं करता है। सबसे कहता है– दे–दे। वहीं मन्दिर के पुजारी या तीर्थ–स्थलों पर तिलक–छाप लगाकर स्वस्ति–वाचन करने वाले पंडे–पुजारी–पुरोहित के लिए ज्यादातर लोग बच्चा हैं। वे कहते हैं– 'बच्चा, कल्याण हो। आओ बच्चा, तिलक लगा दूँ।' गिरजाघर में पादरी की भी कमोबेश यही स्थिति होती है। उसके लिए हर आदमी 'माई चाइल्ड' है। इसीलिए वे कहते हैं– 'गॉड ब्लेस यू माइ चाइल्ड'!

आज कल समाज में धर्म–गुरुओं की बाढ़ आई हुई है। उनमें से कुछ तो बिल्कुल तरुण ही हैं। वे एक सिरे से सभी को बच्चा संबोधित करने से बचना चाहते हैं। वे अपने पास आने वाले व्यक्तियों को भाई और बहन, माता आदि कहकर संबोधित करते हैं। दीक्षा ले चुके शिष्यों को वे साधकों, भाइयों और बहनों ही कहते हैं।

कार्यालयीन संदर्भों में संबोधन :– कार्यालयीन संदर्भ अत्यन्त औपचारिक होते हैं। वहाँ कार्यारत व्यक्तियों में पारस्परिक संबंध या तो अधिकारी–कर्मचारी व अधीनस्थ स्टाफ के होते हैं या बराबरी के। जहाँ अधिकारी अथवा उच्च पदस्थ व्यक्ति अपने से काफी कम हैसियत वाले अधीनस्थों को प्रथम नाम लेकर संबोधित करते हैं, वहीं अपने समवयस्क अथवा अधिक आयु वाले अधीनस्थों को सरनेम सूचक शब्दों के साथ 'जी' लगाकर, जैसे शर्माजी, गुप्ताजी, उपाध्यायजी आदि। अधीनस्थ कर्मचारी जब अपने ऊँचे अधिकारी को संबोधित करते हैं तो सर कहते हैं। यदि एक अधिकारी के सामने किसी और अधिकारी के बारे में बात करनी हो तो उनके नाम के साथ जी लगाते हैं, जैसे चौधरीजी, वर्माजी आदि। यदि अधिकारी का पद वक्ता से बहुत ऊँचा हो और संबोधनकर्ता अल्प–शिक्षित, तो साहब कहकर संबोधित करने की परंपरा है।

एक ही स्तर के पद वाले कर्मचारी अथवाअधिकारियों के मध्य यदि बहुत औपचारिक संबंध हों तो आप कहकर संबोधित करते हैं अन्यथा तुम और तु कहकर भी परस्पर पुकार लेते हैं। संबोधन शब्द का चयन अनौपचारिक संबंधों की निकटता पर निर्भर करता है।

अरे, यार, सुनिये, डॉ. साहब आदि संबोधनों का प्रयोग भी यथावसर होता है। किन्तु कभी भी अपने से उच्च अधिकारी से बात आरम्भ करते समय अरे, यार, सुनिये आदि नहीं कहा जाता। अलबत्ता यदि उच्च अधिकारी अपने कनिष्ठ सहकर्मियों के साथ औपचारिक वातावरण रखना चाहे तो वह अपने अधीनस्थ से कहेगा– 'अरे, गुप्ता जी, आप तो आज दिल्ली जाने वाले थे।' कोई निर्देश देना हो तो उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थ अधिकारी या कर्मचारी से कह सकता है– 'यार, गुप्ता, जरा देखना, उस चोपड़ा वाले मामले में कुछ हो सकता है, क्या?' वरिष्ठ अधिकारी अपने अधीनस्थ को यार कहकर संबोधित

कर सकता है, किन्तु अधीनस्थ अधिकारी अपने वरिष्ठ या उच्च अधिकारी को यार नहीं कह सकता। सच कहें तो यार शब्द का प्रचलन हाल के वर्षों में काफी बढ़ गया है। एक समय था जब यार केवल वारांगनाओं के हुआ करते थे। इस शब्द का प्रयोग सभ्य समाज में प्रायः वर्जित था। अब तो भद्र महिलाएं भी आपसी बातचीत के लिए, बाप बेटे से बात करने के लिए और कार्यालयीन सहयोगी (चाहे वे महिला हों या पुरुष) आपस में बातचीत के दौरान प्रायः यार शब्द का इस्तेमाल संबोधन के लिए करते हैं।

बॉस चाहे कहीं भी रहे, बॉस ही रहता है। उसे सर मैडम कहलाना पसंद है। अभी भारत में अमेरिका या यूरोपीय देशों जैसी खुलेपन की संस्कृति विकसित नहीं हो पाई है कि आप बॉस को नाम से पुकार सकें। अधीनस्थ अधिकारी की हैसियत अच्छी हो तो वह बॉस या वरिष्ठ अधिकारी की पत्नी को भाभी कहकर संबोधित करने का जोखिम चाहे उठा ले, किन्तु यदि बॉस बहुत खुर्राट टाइप का है और बीबी के प्रति बहुत पजेसिव है (जो स्वाभाविक भी है) तो अधीनस्थ की खैरीयत इसी में है कि बॉस बीवी को मैडम ही संबोधित करे। हिन्दी–भाषी भारत में भाभी का रिश्ता मज़ाक का माना जाता है। निरुक्त में देवर शब्द की व्युत्पत्ति बताते हुए कहा गया है– देवरः कस्माद् द्वितीयो वरः। इसलिए किसी महिला से भाभी–देवर का नाता जोड़ने का आशय मजाक का रिश्ता कायम करना माना जाता है और किस बॉस को गबारा होगा कि उसका अधीनस्थ कर्मचारी उसकी पत्नी से मज़ाक करने की जुर्रत करे! वैसे बताते चलें कि आपसी बातचीत में दफ्तरों में अपने साथियों को बॉस कहकर संबोधित करने का काफी चलन है।

कार्यालयों में जब बाहरी व्यक्ति, ग्राहक आदि आते हैं तो वहाँ के अधिकारियों, कर्मचारियों आदि को वह प्रायः सर कहकर या यदि उनके सरनेम किसी माध्यम से ज्ञात हों तो उनका सरनेम बोलकर संबोधन कर सकते हैं, साहब, कंडक्टर साहब, ड्राइवर साहब, इन्स्पेक्टर साहब, दीवान जी आदि। मज़े की बात यह है छोटे से छोटे पद के साथ भी यहाँ साहब का पुछल्ला जुड़ जाता है। कई बार पदवियाँ या शैक्षिक उपलब्धियों को इस्तेमाल भी संबोधन के लिए होता है, जैसे– डॉक्टर साहब, इंजीनियर साहब! साहब का स्त्रीलिंग है साहिबा।

लिखित पत्राचार में उक्त दोनों ही संदर्भों में बहुत कम विकल्पों का इस्तेमाल किया जाता है। शासकीय पत्राचार में पुरुषों के लिए जहाँ महोदय (अंग्रेजी में सर) और महिलाओं के लिए महोदया (अंग्रेजी में मैडम) शब्द का इस्तेमाल होता है, वहीं अर्धशासकीय पत्राचार में प्रापक के पद के अनुसार माननीय, प्रिय आदि के साथ उक्त व्यक्ति का नाम या सरनेम लिखा जाता है, जैसे माननीय गुप्ता जी, प्रिय रामेश्वर आदि।

बाजार–हाट में संबोधन :– बाजार हाट में भी संबोधन का अपना महत्त्व है। मार्केटिंग के विशेषज्ञ इस बात को स्वीकार करेंगे कि ग्राहक से सौदा पटाने के लिए उसे कैसे–कैसे संबोधनों से पुकारना पड़ता है। माल के बारे में बताने के साथ–साथ, विक्रेता को यह भी ध्यान रखना पड़ता है कि ग्राहक का अहं किसी भी प्रकार संतुष्ट हो जाए, ताकि वह बेचीजानेवाली वस्तु या सेवा को खरीद ले। यदि कोई पढ़ा–लिखा पुरुष दुकान की ओर मुखातिब हो, तो दुकानदार कहेगा– आइए सर, अन्दर आइए न सर। दुकानदार को मालूम है कि पढ़ा–लिखा, दफ्तर में काम करने वाला व्यक्ति सर संबोधन सुनकर कुप्पा हो जाता है। सर बोलने से उसके अहं की पुष्टि होती है। वहीं ऐसे ग्राहक के साथ आई महिला को वह मैडम कहकर संबोधित करेगा। भोपाल, इंदौर, झांसी आदि इलाकों में भद्र महिलाओं को बाई या भाई साहब कहकर संबोधित करने का प्रचलन है। अतः वहाँ मैडम के साथ–साथ भाई साहब संबोधन भी सुनने को मिल जाता है।

ऐसे ही किसी विक्रेता के पास यदि कोई किसान ग्राहक पहुँचे तो वह उसे सर न बुलाकर चौधरी साहब, सरपंच जी या प्रधान जी कहेगा। किसी थोक विक्रेता के पास कोई फुटकर दुकानदार सामान लेने पहुँचे, तो ज़ाहिर सी बात है कि उसे सेठ जी बुलाया जाएगा। वहीं ज्यादा मिलनसारिता दिखाने वाले ग्राहक से दुकानदार भाई साहब और भाभी जी या फिर बहन जी का नाता जोड़ने में गुरेज़ नहीं करेगा और उसे लगभग फुसला ही लेगा– 'अरे भाई साहब, अरे भाभी जी आपकी ही दुकान है। जब मन करे आ जाइए। पैसों का क्या है, पैसे तो आते रहेंगे। आप सामान तो पसन्द कीजिए, दाम लग जाएँगे। बिल्कुल आप वाले दाम लग जाएँगे। 'अंकल, भइयाजी, दीदी आदि कहकर संबोधित करने के उदाहरण भी आपको मिल जाएँगे। उसका मन किया तो आपको मालिक, और हुजूर भी कह सकता है, जैसे– मालिक, इतना कम नहीं हो पाएगा।'

इसी प्रकार दुकानदार के संबोधन के समानांतर उसके ग्राहक को संबोधन भी बदलता रहता है। जैसे महिलाएं कहती मिलेंगी– 'सुनिए! सुनिए, ज़रा वो फिरोज़ी साड़ी तो दिखाइए।' और उनके बिन्दास पुरुष साथी कह सकते हैं– 'क्या यार, कोई ढंग की चीज़ दिखाओ।' यदि समवयस्क या अपने से कम उम्र का दुकानदार हुआ तो पुरुष ग्राहक बोल सकता है–'भइया, जरा इसके दाम तो बताओ।' और उसके अधिक वय का होने पर भाई साहब, सेठजी, चाचा, ताऊ, अंकल, लाला जी आदि संबोधन इस्तेमाल किए जा सकते हैं। वैसे आधुनिक दुकानों में लाला जी और सेठ जी जैसे संबोधन कुछ कम सुनाई पड़ते हैं।

हिन्दी प्रान्तों में दुकानदार द्वारा पुरुष ग्राहक के लिए सबसे सुरक्षित संबोधन रहा है– बाबू जी! यह किसी भी व्यस्क पुरुष के साथ

फिट हो जाता है। इसी प्रकार शहरी महिलाओं के लिए मेम साहब बड़ा ही मुफीद संबोधन है। दुकानदार वयोवृद्ध हो और महिला ग्राहक अल्पवयस्का तो वह उसे बिटिया भी कह सकता है। बिटिया विवाहिता हो और ससुराल पक्ष के लोगों के साथ आई हो तो उसे बहूजी भी बुलाया जा सकता है।

रिक्शेवाले हों, छोटे दुकानदार, ठेलेवाले या कबाड़ी, मेहनतकश मजदूर हों या कामगार, सभी को भइया कहकर संबोधित किया जा सकता है। यह अलग बात है कि मुम्बई आदि शहरों में भइया शब्द ने अपनी गरिमा खो दी है और यहाँ पूर्वी उत्तर प्रदेश व बिहार से आए लोगों को भइया कहकर उनका मज़ाक उड़ाया जाता है। सुनने में आया है कि मुम्बई में बरतन–पोंछा करने वाली बाई भी पूछकर आश्वस्त हो लेती है कि 'आप लोग भइया तो नहीं है?'

फेरी वालों द्वारा संबोधन :– जब कोई फेरीवाला या फ्लैटों के अहाते में पहुँचता है तो अपने संभावित ग्राहकों को अपने आगमन की सूचना देने के लिए किसी व्यक्ति विशेष को संबोधित नहीं करता, बल्कि वह ऊँची आवाज में चिल्लाना शुरु कर देता है, जैसे–आलू, मटर, गोभी, प्याज ले लो, जामुन काले–करेला...., फालसे। उसका उद्देश्य ग्राहकों को बुलाना और अपने माल के बारे में बताना होता है, किन्तु संबोधन के शब्दों का उच्चारण न करते हुए भी वह अपने ग्राहकों को संबोधित कर रहा है। जब ग्राहक अपने घर से बाहर आकर उससे मुखातिब होते हैं, तब वह उनको विशिष्ट शब्दों से पुकारकर संबोधित करता है– 'मेमसाब गोभी ले लीजिए, या 'साहब टमाटर ले लीजिए, बिलकुल ताजे हैं, लेकिन संबोधन के लिए वह केवल अपने जण्य का नामोल्लेख करके चिल्लाते मात्र हैं, जैसे चाय... चाय... चाय गरम। बसों में कंडक्टर अपनी सवारियों को संबोधित करने के लिए कहते हैं– टिकट बोलो, टिकट। यहाँ भई, टिकट बोलो टिकट। यह भी ग्राहकों को संबोधित करने का उसका तरीका है।

संबोधन–शब्दावली पर स्थानिक परिवर्तनों का प्रभाव :– संबोधन भाषिक–शब्दावली संवाद की शुरुआत करने और संप्रेषण को आधिकाधिक असरदार बनाने के काम आते हैं। इसलिए स्थान–'परिवर्तन के साथ संबोधन–शब्दावली में भी परिवर्तन का आना स्वाभाविक है। इस लिहाज से संबोधनों की स्थानिक भंगिमाओं का विहंगावलोकन करना समीचिन रहेगा। वक्ता जब अपने मुख से संबोधन का पहला शब्द उच्चारित करता है, तभी से उसके वतन, प्रान्त, शैक्षिक स्तर और सामाजिक हैसियत और उसकी मनोदशा का कुछ आभास मिलना आरंभ हो जाता है।

सरदार जी ओए कहकर बात कहना शुरु करेंगे, जबकि लखनवी लोग अमां कहकर। भोजपुरी–भाषी को कुछ पूछना हो तो का हो बोलेगा। दिल्ली वालों ने भइया को भइये बना डाला है, जैसे– 'भइये रख दे, भइये तुझसे नहीं होगा'। हिन्दी–भाषी क्षेत्रों में भई भी खूब चलता है, जैसे 'भई ऐसे कैसे जा सकते हो आप'! आप लिहाज से भई भी एक संबोधन ही है। वहीं तमिल लोग बात–बात पर अइयो रामा, अइयो–अइयो कहते हैं।

शहरों में कई बार 'हेलो' का उपयोग संबोधन के लिए ही होता है। आजकल जब हम किसी को फोन मिलाते हैं तो उधर से या इधर से, यानी दोनों तरफ से हेलो बोलकर ही श्रोता को संबोधित किया जाता है। लक्ष्य श्रोता के अनुसार हेलो की तान–अनुतान बदलती रहती है। संबोधन की दुनिया में 'हेलो' ने लंबी यात्रा तय की है।

शहरों में कई बार 'हेलो' का उपयोग संबोधन के लिए ही होता है। आजकल जब हम किसी को फोन मिलाते हैं तो उधर से या इधर से, यानी दोनों तरफ से हेलो बोलकर ही श्रोता को संबोधित किया जाता है। लक्ष्य श्रोता के अनुसार हेलो की तान–अनुतान बदलती रहती है। संबोधन की दुनिया में 'हेलो' ने लंबी यात्रा तय की है।

संबोधन–सूचक शब्दों की फेहरिश्त लंबी हो सकती है। इनमें से कुछ सार्थक शब्द होते हैं, जबकि कुछ केवल ध्वनियाँ मात्र, जिनका कोशीय अर्थ हमें शायद ही मिले। सच कहें तो भाषा–वैज्ञानिक नज़रिए से संबोधन का सम्यक् अध्ययन किए जाने की आवश्यकता है। बड़े भाषा–समुदायों के समुचित सर्वेक्षण और विश्लेषण के उपरान्त संबोधन–शब्दावली संबंधी बहुत से रोचक तथ्यों के प्रकाश में आने की संभावना है। इसलिए इस विषय का विस्तृत अध्ययन किया जाना वर्तमान समय की ही मांग है।

1. डॉ0 माधव सोनटक्के : प्रयोजन मूलक हिन्दी, 2. प्रशासनिक शब्दावली 2002, 3. कमल कुमार बोस : प्रयोजनमूलक हिन्दी, 4. हिन्दी भाषा संरचनाएँ, 5. प्रशासन शब्दावली 2001, 6. वृहत् प्रशासन शब्दावली 2001, 7. पुष्पा कुमारी : प्रशासनिक हिन्दी, 8. हीरालाल बाछोलिया : राजभाषा हिन्दी और उसका विकास ।

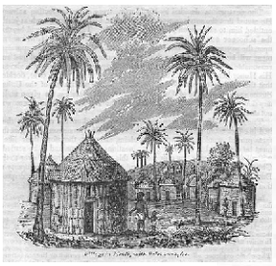

वन तुलसी गंध की तरह.... 'रेणु'

डॉ0 अनुज प्रभात
दीनदयाल चौक, फारविसगंज (अररिया)
मो0 : 9470023249

औराही–हिंगना की मिट्टी और उस मिट्टी में वन तुलसी की गंध... उसका सुवास... और उस सुवास से विश्व को आंचलिकता की परिभाषा से सुवासित करने... उसके नये रुप–रंग को निखारने जिस बच्चे ने जन्म लिया... जिसे शिलानाथ मंडल... पानो देवी ने अपने को ऋण के बोझ से दबा होने की स्थिति में हँसते–हँसते गाँव की भाषा में 'रिनुआ' कहकर पुकारा... वह 'रिनुआ' परिष्कृत होकर 'रेणु'... अमर कथा शिल्पी... फणीश्वर नाथ 'रेणु' बना।

तब जिला पूर्णियाँ था, अब अररिया है। लेकिन तब और अब की बातें थोड़ी बदल सी गई हैं। ये पंक्तिया– ''इसमें फूल भी हैं, शूल मी, धूल भी गुलाब की, कीचड़ भी है, चंदन मी...'' तब की थी जब रेणु ने 1954 में ''मैला आंचल'' लिखा और उसके नीचे कोष्ठ में एक पंक्ति– 'एक आंचलिक उपन्यास'...।

एक कौंध हुई... चमकने की कौंध.... चकाचौंध सा... और लगा जैसे हिन्दी साहित्य को कोई, अपने शब्दों से बेध गया हो... किसी ने आंचलिकता की नई परिभाषा गढ़ डाली हो।

यह 'मैला आंचल'। (एक आंचलिक उपन्यास)। का पहला कदम और फणीश्वर नाथ रेणु का प्रथम आंचलिकता के क्षेत्र में आगाज था।

यद्यपि आंचलिक शब्द उस वक्त नया नहीं था। नागार्जुन ने 'बलचनमा' लिखकर और प्रेमचंद ने 'गोदान' लिखकर आंचलिकता से लोगों को परिचित करा चुका था, लेकिन रेणु की आंचलिकता एक नई पौध बनकर उगी, जिसे पहचानने के लिए पश्चिमी जर्मनी के राईबोल विश्वविद्यालय की छात्रा हेडी सादोक, टेक्सास अमेरिका के शोधार्थी ईयान बुल्फर्ड क्रो औराही–हींगना 'रेणु गाँव' आज–कल में आना रेणु को रेणु को परिभाषित करता तो हैं ही... आंचलिकता को समसामयिकता भी बनाती है।

प्रश्न यह है कि रेणु की आंचलिकता में ऐसा क्या है जो विश्व के शोधार्थी यहाँ तक पहुँचे? इस सम्बन्ध में हेडी सादोक साहित्य व गाँव के जन–जीवन समानता की बात पर कहती हैं– 'रेणु की कहानियाँ पढ़ते हुए जैसी तस्वीरें नजरों के सामने उभरती है, उनका गाँव देखने के बाद वैसी ही तस्वीरें, प्रत्यक्ष रुप में नजर आ रही है।''

ईयान वुल्फर्ड इसे आज भी उतना ही सत्य मानते हैं जिसे रेणु ने मैला आंचल के रचनाकाल में लिखा।

सच तो यह है कि मैला आंचल पहला आंचलिक उपन्यास है, जिसके पात्र– बालदेव, हरगौरी, डॉ0 प्रशान्त, काली चरण, बावनदास, शिवनाथ, रामकिसन, ससांक, फुलिया, लक्ष्मी, कमली, झुबरी और ममता, ऐसे जीवन्त हैं जो पूर्णियाँ, कटिहार से लेकर भरगामा गाँव के साथ स्वयं का गाँव औराही–हींगना में आज भी जीवन्त हैं, अपने किसी न किसी मूल नाम से।

लेकिन रेणु कथाकार बहुत पहले से थे। उनकी पहली कहानी 'बटबाबा' सन् 1945 में विश्वामित्र में छपी थी। बाद इसके उपन्यास लेखन के साथ–साथ कहानी लेखन भी चलता रहा। ठुमरी, ठेस, रसप्रिया आदि कहानियों को भी सम्मान मिला, उसमें भी आंचलिकता को लोगों ने देखा। पर जब 'मारे गये गुल्फाम'' पर 'तीसरी कसम' फिल्म बनी तो फिल्मों में छायांकन... और हीरामन का 'इस्स...' शब्द का प्रयोग ने इस कहानी को उसकी पट–कथा लेखन, जिसे स्वयं रेणु ने लिखा, कालजयी बना दिया।

इसके पीछे हिन्दी साहित्य लेखन में आंचलिकता के मूल आंचलिक शब्द का प्रयोग, जैसे– टीसन (स्टेशन), मलेटीरी पवली (पब्लिक जनता), मलाय (मलाई), रमैन (रामायण), भनसाघर (रसोईघर), जलखै (नास्ता), कनिया (दुल्हन), कोहबर (दुल्हन का कमरा), लबना (दीपदान), घैला (घड़ा), डागडर (डॉक्टर), भुरुकबा (भोर का तारा), बोरसी (आग रखने का मिट्टी का बर्त्तन), डोल–डाल (नित्य क्रिया), गान्ही बाबा (गांधी जी), जहेल (जेल), पंचलैट (पेट्रोमैक्स) आदि ऐसे हुए हैं, जो इस क्षेत्र की मूल ग्रामीण भाषा रही है और इस भाषा ने जब हिन्दी साहित्य पर दस्तक दिया तो आंचलिकता की एक और परिभाषा बनी 'रेणु' के नाम की।

मैला आंचल के प्रकाशन के बाद 1957 में 'परती–परिकथा' आई। परतीपरिकथा–धूसर, वीरान, अन्तहीन प्रांतर। पतिता भूमि, परती जमीन, बंध्या... धरती...धरती नहीं, परती की लाश जिसपर कफन की तरह फैली हुई– बालूचरों की पंक्तियाँ... कहने को उपन्यास लेकिन नहीं, एक मंच जिस पर छोटे–बड़े कई पात्रों ने बखुबी अदा किया अपना पार्ट–टूट रहे गाँव, टूट रहे परिवार और टूट

रहे व्यक्ति का। यहाँ हमें 1948 में 'राष्ट्र संदेश' में छपी 'रेणु' की कविता की कुछ पंक्तिया याद आती है–

कि अब तू हो गई मिट्टी सरहदी
इसी से हर सुबह कुछ पूछता हूँ
तुम्हारे पेड़ से, पत्तों से, दरिया और दयारों से
सुबह उँघती सी, मदभरी ठंडी हवा से
कि बोलो! रात तो गुजरी खुशी से?
कि बोलो! डर नहीं तो है किसी से?

सच तो यह है कि एक डर 'मलेरिया' का जहाँ मैला आंचल में था तो दूसरा डर 'डैनिया बालू' का, जो कोशी से निलककर बाढ़ में बहकर सिलचर... परती परिकथा में।

सच तीखा होता है और रेणु की परती परिकथा का एक सच तब सामने आया जब 18 अगस्त 2008 को 2.45 पर कोशी ने तबाही दिखाना शुरु किया– सुपौल, मधेपुरा, सहरसा, अररिया जैसे कई जिलों को अपने चपेट में ले लिया। इस चपेट के बाद आज जो दिखता है... बालुका राशि... प्रान्तर... वीरान सा, वह परती परिकथा ही तो है... रेणु की परती परिकथा का एक सच।

'परती परिकथा' के बाद रेणु ने आंचलिकता में बंधना छोड़ दिया। उनकी दिशा बदली और 1963 में दीर्घत्या, 1965 में जुलूस, 1966 में 'कितने चौराहे' लिखा, तो बाद इसके शहरी जीवन पर आधारित 'पलटू बाबू रोड', लिखा। लेकिन 'पलटू बाबू रोड का प्रकाशन उनके जीवन काल में नहीं हुआ। इसका प्रकाशन 1979 में हुआ और लोगों को लगा कि रेणु कहीं से भी केवल आंचलिक नहीं है। आत्मा यदि आंचलिक रहा है तो शरीर ने शहरीपन भी देखा है।

रेणु का प्रथम उपन्यास भले ही 'मैला आंचल' हो और पहली कहानी 'बटबाबा', लेकिन उनकी कलम उपन्यास और कहानी दोनों में एक साथ चली। कहानी के रुप में उन्हौंने कई संग्रह को जन्म दिया, जैसे– ठुमरी, अगिनखोर, आदिम रात्रि की महक, अच्छे आदमी आदि। इन संग्रहों में 'तीन बिंदिया' और 'जलवा' ऐसी कहानी है जिसे मिक्स कथा भी कह सकते हैं।

गौरतलब है कि 'रेणु' ने जो कुछ भी लिखा, वह मिट्टी की खुशबू को सूंघ कर लिखा, उसके दर्द को पहचानकर सामाजिक चेतना के लिए राजनैतिक स्तर पर अपना तेवर भी बदला। यह तेवर 1942 में दिखा जब थाना पर रेड करने के आरोप में हजारीबाग जेल जाना पड़ा। इसके बाद उन्होंने अररिया, पूर्णियाँ, भागलपुर का जेल भी देखा। इस जेल यात्रा के दौरान ही उनका परिचय समाजवादी नेता जयप्रकाश नारायण, डॉ0 राम मनोहर लोहिया से हुआ। इस परिचय ने उनके व्यक्तित्व को राजनैतिक तो बनाया ही, अपनी लेखनी को भी उन्होंने राजनीति की ओर केन्द्रित किया।

बिराट नगर के वी0पी0 कोईराला एवं जी0पी0 कोईराला के साथ जुड़ना, पारिवारिक सदस्य बनना, राणाशाही के खिलाफ आन्दोलन में सक्रिय होना... उनके क्रांतिकारी व्यक्तित्व को दर्शाता है जहाँ, वहीं 'नेपाली क्रांति कथा' की रचना करना क्रांतिकारी लेखन की हवा को गर्म करता है।

सच तो यह है कि 'रेणु' के लेखन और व्यक्तित्व दोनों में ही सीमाहीनता रही है। कथा लेखन में आंचलिकता को जितनी ऊँचाई दी, उतना ही अन्य क्षेत्र के साहित्य का सम्मान किया। तात्पर्य यह कि एक तरफ 'मैला आंचल', परती परिकथा है, तो दूसरी तरफ 'पटलू बाबू रोड' नेपाली क्रांति कथा है। ये विविध क्षेत्र साहित्य के हैं, तो व्यक्तित्व दोनों क्षेत्र से अलग नहीं। गाँव की पद्मा और शहर की लतिका, उनके जीवन में अनमोल रहे हैं, जिनसे उनका साहित्य निखरा... शरीर और आत्मा का संगम हुआ साथ ही 'वन तुलसी गंध' की तरह फैलकर विश्व को सुवासित किया। रेणु... रेणु नहीं... मैला आंचल... कालजयी एक अमर कथा शिल्प... विश्व के लिए।

ग़ज़ल

केशव शरण
सिकरौल, वाराणसी
मो0 : 9415295137

बहारों तक रहा जाने से मैं भी
तुम्हारे आ नहीं पाने से मैं भी

जला ही प्यार का दीपक न तुझमें
वगरना कम न परवाने से मैं भी

लिये सब इश्क़ के ग़म जा भी सकता
कहाँ हूँ दूर मयख़ाने से मैं भी

करम हो लुत्फ़ तो देखो मचलना
तड़प उठता हूँ तड़पाने से मैं भी

लगी हो चोट तो रोता ही जाता
समझता कुछ न समझाने से मैं भी

किसी के आइने में देखता हूँ
मुख़ातिब कैसे दीवाने से मैं भी

सभी तो बुद्ध बन सकते नहीं हैं
घर आया लौट वीराने से मैं भी ।

'समीक्षा'

कहानी संग्रह : डॉ0 सुजाता

दयानन्द जायसवाल

आधुनिक हिन्दी कहानी के एक सशक्त हस्ताक्षर एवं हिन्दी साहित्य में स्त्री नारी मुक्ति आन्दोलन के पुरोधाओं में से एक डॉ0 सुजाता चौधरी ने अपने समकालीन हिन्दी कहानी लेखन को ध्यान में रखते हुए उसे इस प्रकार परिभाषित किया है जो यथार्थ दृष्टि, प्रामणिकता और इमानदारी पर आधारित है। कहानी साहित्य की एक लोकप्रिय और प्रभावशाली विधा है। साहित्य निरुद्देश्य नहीं होता। कहानी में कहानीकार का उद्देश्य या तो यथार्थ का अंकन होता है या आदर्श की स्थापना। वह हमेशा समाज कल्याण के सापेक्ष होता है।

हमारे समाज में रिश्तों को आत्मीयता और मजबूती मिलती रही है। ऐसे अनगिनत संबंधों के अनुभवों से संसार बना और जीवन्त है। लेकिन तरह–तरह के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिवर्तनों के सापेक्ष में बदलाव भी होते रहे हैं। इस श्रृंखला की विभिन्न कड़ियों में कहानियों के कथ्य चयन करते समय डॉ0 सुजाता जी ने इस बात का ध्यान रखा है कि ''किसी एक खास अवधि या कालखंड की न होकर समाज के परिर्वतन और मानव–आत्मा पर पड़नेवाले असर को किस प्रकार उल्लिखित कर अपनी रचनाशीलता में इस ठोस तत्थ को उपस्थित करना है।''

मानवता की सक्रिय सेविका, लेखिका डॉ0 सुजाता चौधरी अपनी कहानी संग्रह ''सच होते सपने'' एवं ''मर्द ऐसे ही होते हैं'' को लेकर समाज में घट रही घटनाओं पर जनमानस की चिन्ता, गाँव में होने और नहीं होने के बीच का संघर्ष, अपने जीवन को किसी भी प्रकार बचा लेने की कोशिशें, राजनीति के भँवर में फँसी हुई जनता, निर्लज्ज हो गयी मानवीयता के बीच दम तोड़ती सामाजिकता, छोटे–छोटे स्वार्थों के लिए रीढ़ विहीन हो गया जनमानस, मखमली देह पर उतरी बाजारु प्रेतात्माएँ, इन सारे प्रश्नों को लेकर आज हमारे सामने उपस्थित हैं। आज जिस प्रकार की जीवन शैली पनप रही है, उसमें मूल्यों को कोई स्थान नहीं है। पूरे विश्व में मूल्य बोध ही बदल गया है। आज कृष्ण की तरह कोई पात्र नहीं गढ़ रहे हैं जो औरत का सम्मान और सौन्दर्य बचा सके, बल्कि इनकी कहानी के डॉ0 ललित की तरह अपने किये उपकार के बदले लड़कियों को अपने पीछे आने का निमंत्रण जरुर देते हैं। नारियों के चरित्र को सिर्फ गींजने का काम हो रहा है, उनका खोया सम्मान उन्हें वापस दिलाने या लौटाने की कोई तैयारी नहीं हो रही है। इन संबंधों में न तो कोई संवेदना, न कोई भाव और न कोई प्रेम ही जन्म लेता है। किन्तु लेखिका डॉ0 सुजाता की इन कहानियों में बड़ी सूक्ष्मतापूर्ण एक युग बोध दिखाई दे रहा है, भविष्य की लड़ाई को खुद लड़ने की प्रेरणा भी मिल रही है और वही पीड़ित नारी–पुरुषों के लिए ईश्वर से दुआ भी करती हैं कि मुझे इतना तो हक दो कि मैं अपने मर्द और बेटे को कह सकूँ कि वो बेवफा नहीं है। अत्याचारों से हार नहीं मानती, संघर्षशील इनकी नायिकाएँ यह स्पष्ट कर दी कि पुरुषों की चेतना अभी भी स्थूल इन्द्रिय–बोध के स्तर तक ही ठिठकी हुई है। लेखिका डॉ0 सुजाता ने ''सच होते सपने'' कहानी संग्रह में नारियों को प्रतिकार और प्रतिरोध की संस्कृति दी। नग्नता और समर्पण के सहारे नारियाँ कुछ भी हासिल नहीं कर सकती, बल्कि आवरण और प्रतिकार ही उसके आने वाले दिनों की नैतिकता बनेगी।

आज कथाकार के लिए यह एक बहुत बड़ी चुनौती है कि उसकी रचना अपने दायित्व का निर्वाह इन समाज–सन्दर्भों में किस हद तक कर पाती है? भ्रष्टाचार, आतंक और गुन्डागर्दी के बीच जी रही वह भीड़ क्या साहित्य के प्रति इमान्दार है? सेक्स या हिंसा पर आधारित कहानियाँ जिसके लिए लिखी जाती हैं उस तक वह बड़ी आसानी से पहुँच जाती है। लेकिन वहीं पर संघर्षशील कहानियाँ अपने लक्ष्य से दूर रह जाती हैं। इसका एक कारण यह है कि आज कहानी व्यक्तिगत रुप से पढ़ने के लिए लिखी जाती। परिवार के सभी सदस्यों के साथ पढने के लिए नहीं लिखी जाती। क्योंकि कोई भी रचनात्मक विधा रचनाकार की यात्रा में साथ–साथ चलनेवाली सच्चाई होती है। उसकी चुनौती चाहे जैसे भी हो झेलना समाज को ही पड़ता है।

डॉ0 सुजाता के अपनी इन दोनों कहानी संग्रह में अपनी सशक्त संघर्ष की उपज शोषक और शोषित की एक खास अन्त वाली कहानियाँ लिखी है। वहाँ एक खास स्थिति है, जो एक खास स्थिति से निपटने के लिए एक खास रास्ता है जो एक खास समय की विशेष मांग है। संग्रह में एक कहानी यह भी है ''फिर उसी मोड़ पर'' जिसमें मुख्य रुप से सर्द चेहरा वाली बेजान सी सुनयना जिसने आततायियों द्वारा की जाने वाली दुर्घटना के भीषण मंजर को देखा है और नफरत के उस वहशीपन को भोगी है जिसमें सिर्फ हैवानियत ही थी। एक कहानी 'बीच की कड़ी' भी है जिसमें महाराज उदय सिंह ने घुमते हुए एक साधारण किसान की लड़की को देख शादी–शुदा होकर भी उसके घर शादी का प्रस्ताव भेजा और अपना बना लिया। पुरुषत्व क्या है? हलाँकि उसने एक वीर पुत्र राणा प्रताप सिंह को जन्म दिया, फिर भी राणा सांगा और बुंदी की राजकुमारी राजा के बीच की कड़ी बनते ही वो घुट कर रह जाती है। यही तो नियति है स्त्रियों की। कितने तूफान सीने में दफन कर लेती हैं।

समय और परिस्थिति के भविष्य और वर्तमान, अतीत के छिपे हुए धुंधले विचारों की जो चिनगारियाँ डॉ0 सुजाता के हृदय में मन्द एवं प्रच्छन्न थी वे ही किरणे बनकर इन दोनों कहानी संग्रह में चमक रही हैं। इनकी कहानियों में जिन संवेदनाओं की अभिव्यक्ति की गई है वह समय, समाज और संस्कार के भीतर ही नहीं, बल्कि कुछ न कुछ सोचने को मजबूर करती है। बहुआयामी विषयों को समेटे, अभिनवशैली से अभिभूत, गहन विवेचन, गम्भीर विचार धाराएँ एवं अपारगम्य मंथन की पृष्ठभूमि में भाषा का विरल संयोग कथा जगत को नवदृष्टि से संवर्धित करता है। इसकी ही एक कहानी ''कड़वी घूंट'' है जहाँ स्त्रियों पर जुल्मों की श्रृंखला का कारण अशिक्षा, गरीबी, अंधविश्वास या पीछड़ापन ही नहीं होता, बल्कि बेटा को जन्म क्यों नहीं दी बेटी क्यों? इसका आधार बनाकर पढ़ी–लिखी ग्रेजुएट महिला पर अत्याचार होता है और उसे संस्कार की दुहाई देकर चुप–चाप रहने, सहने को विवस करते हैं। बच्चियों को जनते–जनते शरीर की दुर्दशा कर ली, पर किसी को उस पर हमदर्दी नहीं आयी और उसके पति दूसरी शादी पर अत्याचारी की तरह व्यवहार करने लगे। ये सारी स्थितियाँ यह सिद्ध करती है कि कहानीकार स्त्रियों पर होनेवाली बर्बरता को ही गहरायी से देख रही है और कहीं बहुत भीतर तक इससे जुड़ी हुई हैं– जुड़ा रहना चाहती भी हैं। वह इन पात्रों की तरह ही इस उम्मीद के साथ जी रही है कि आने वाला समय इन शोषितों का होगा। तब इन पर होने वाले हमले रुक जायेंगे.... तब कोई अपनी इच्छानुसार इन्हें उपयोग की वस्तु के रुप में नहीं देखेगा और न ही अधिकारविहीन समझेगा। आखिर कब तक पीती रहती वो कड़वी घूंट, पति, परिवार और समाज की क्रूर निगाहों से। आखिर उसका स्वाभिमान जगा और सामना की, नियम–कानून का सहारा बताकर उस पींजरे से आजाद तो हो गयीं, पर उस बच्चियों की देख–रेख में अपना पूरा जीवन झोंक दी। यह कहानी सिर्फ इसकी कहानी नहीं है, बल्कि समस्त स्त्री समाज की व्यथा–कथा है जो ऐसे क्रूर पुरुषों एवं समाज से मजबूर है और अन्ततः इसे ही अपनी नियति मान बैठती हैं।

डॉ0 सुजाता की कहानियों में हम पाते हैं बजूद की स्थापना इन्सानियत का पहला फर्ज है। उसका नैतिक और व्यावहारिक गौरव बनाए रखना किसी भी मनुष्य के जीवन क्रम का रास्ता है। नैतिकता और मानवीय न्याय में दरक बनाकर स्त्री को निर्मित बस्तु बनाए रखने की गुस्ताखी आखिर कब तक चलेगी? अब उसके मन में प्रश्न उठने लगा है, वह सचेत होने लगी है, अपनी भावनाओं के साथ शरीर की इस दुरवस्था से कभी छूट सकती है? आन्तरिक रुप से सुरक्षात्मक सामाजिक माहौल तैयार करने की दिशा में क्या देह ही उसको सहायता पहुँचाएगी? इस अभिव्यक्ति में अपनी जैविक अवस्था की नियत विशेषताओं को शोषण की राजनीति में समा लेने की सांसारिक कटुता पर व्यंग्य है। 1999 में केरल में दो मामले ऐसे दर्ज किये गये हैं कि दफ्नाए गये स्त्री शव खोदकर उनके राक्षसीय लैंगिक उपयोग किये गये। यहाँ हम दफ्नाए गये शवों को भी सुरक्षा नहीं दे सकते तो जीवित स्त्रियों की पीड़ा कितनी बड़ी हो सकती है? काया की पीड़ा आत्मा तक व्याप्त हो जाती है। अपनी वेदना को छिपाकर जीना उसके लिए असम्भव ही नहीं बल्कि अनैतिक भी हो जाता है। चयन का विकल्प जहाँ नहीं दिया जाता, वहाँ सबसे पहले मानवाधिकार की माँग उठने लगती है। फिर वह मुक्ति कामना में परिणत होकर समाज और सत्ता से संघर्ष करती है। उसके और सामाजिक संघर्ष के बीच की अभिव्यक्ति उनकी कहानी बन जाती है। जो नये समाज और सभ्यता के पुनर्निर्माण हेतु अनिवार्य मानवीय परिश्रम हो जाता है। अभिव्यक्त कहानियों को पुल इस प्रकार उसका भौतिक और संवेदनात्मक खालीपन मिटाने में सहायक बन जाता है। दुनिया में प्रदत्त समस्त जीवनानुभवों तथा पति के दिये गये घर–गृहस्थी के तमाम आसरों के अधीन रहती हुई वह अकेली सोचती है– 'क्या मेरी अपनी कोई धड़कन है?'

डॉ0 सुजाता की कहानियों में भाषा और शिल्प के स्तर पर विविधता देखने को मिलती है। इनकी किसी भी कहानी से गुजरना शुरु करें तो एकलय, एक प्रवाह हमारे साथ–साथ चलना शुरु करता है– पर जो सबसे बड़ी खूबी है कि नितान्त आत्मीयता निकटता के बीच से फूटकर ये कहानियाँ कुछ–न–कुछ कह जाती हैं और हमें ठिठकना पड़ जाता है। कहानी पढ़ना शुरु करें तो उसके भीतर प्रवेश करने पर आप पाएँगे कि कहानी उन तमाम स्थितियों के बीच से भी कुछ ऐसा दे जा रही है जिसकी आपको अपेक्षा नहीं रही थी।

कहानी संग्रह–
सच होते सपने
मूल्य – 200 रु

मर्द ऐसे ही होते हैं
मूल्य – 100 रु

आलेख

संयोग या नियति का खेल

डॉ0 आनंद प्रकाश
604 रेनट्री रोड, बुफैलो ग्रोव
शिकागो, अमेरिका
फोन : 847–634–3906

डा0 आनंद प्रकाश व्यवसाय से सिविल इंजीनियर हैं। गत 40 वर्षों से अमेरिका में कार्यरत हैं। इससे पूर्व, भारत में 5–6 वर्ष अध्यापन तथा 7 वर्ष इंजीनियर का कार्य किया। आजकल शिकागो में रहते हैं। एक तनीकी पुस्तक और एक इंग्लिश उपन्यास लिखा है। हिंदी में फुटकर कवितायें लिखने में तथा हिंदी साहित्य अध्ययन में रुचि रखते हैं।

अंततः रवि के अमेरिका लौटने का समय आ पहुंचा। दिसम्बर मास के अंतिम रविवार की संध्या कैथी ने उसको भोजनार्थ आमंत्रित किया था। तीन मास के संपर्क में उन दोनों में पारस्परिक स्नेह, श्रद्धा और आदर पर आधारित घनिष्टता आ गयी थी। दोनों को एक दूसरे का साथ अत्यधिक रोचक एवं मनोरंजक लगने लगा था, उत्कंठा रहती थी बार बार मिलने की। सिडनी में एकांतवास के कारण जब भी उसका मन भ्रमित हो जाता था, तब कैथी उसको अपनी स्नेहमयी मधुर वार्ता से आन्तरिक सांत्वना देती थी।

कैथी ने आन के सायं काल के भोजन का आयोजन एक उच्चस्तरीय रेस्टोरेंट में किया था। पूर्व निर्धारित समय पर रवि तैयार होकर अपने होटल की लॉबी में आया। कुछ ही क्षण पश्चात् कैथी ने लॉबी में प्रवेश किया। उसको पूर्वानुकूल, सुंदर, उत्तेजक, किन्तु गरिमामयी एवं शालीन वेश भूषा में देख कर रवि अचम्भित रह गया। पहली बार आभास हुआ, कैथी कितनी सुंदर और आकर्षक युवती है। सदा ही साधारण, अनौपचारिक वेश में ही तो देखा था उसको।

भोजन के पश्चात् कैथी ने उसको अपने अपार्टमेंट में भोजन–उपरांत अल्पाहार एवं पेय हेतु आमंत्रित किया। मंत्र–मुग्ध सा रवि, कैथी की कार में सिडनी हार्बर के पार उसके निवास गृह पहुंचा। आज वह कुछ खोया सा, कुछ विपन्न, उदास, और अतिशय मित–भाषी सा लग रहा था। कैथी ने प्रश्न किया, ''क्या सोच रहे हो रवि; किस उलझन में हो?'' ''कुछ नहीं; बस तुम्हारी उदारता, सहायता, स्नेह, और सहानुभूति, जो मुझ जैसे विदेशी को प्राप्त हुई, उसकी मन ही मन सराहना कर रहा था। यह सोचकर कि कदाचित, तुमसे आज का यह मिलन मेरा अंतिम होगा, मन विचलित और व्यथित सा हो रहा है। इतनी घनिष्टता और अपनत्व कहाँ मिलेगा अब?'' यह कहते–कहते वह आत्म–विभोर हो गया। कुछ क्षणों तक दोनों एक दूसरे को अनिमिष देखते रहे। कदाचित, दृष्टि–पथ के माध्यम से मूक भाषा में मनोभावों का आदान प्रदान हुआ हो; किन्तु, संभवतः किसी संकोचवश पारस्परिक प्रणय–भाव तो अव्यक्त ही रह गये और उससे आगे का मार्ग तो सर्वथा अनिश्चित।

कैथी ने पुनः मौन भंग किया, ''रवि, इस प्रकार विह्वल होने का कोई कारण नहीं; हमारे सम्मुख एक लम्बा भविष्य है। क्या जाने, जीवन किसी मोड़ों पर हमारा पुनर्मिलन और संपर्क हो जाए। पत्र व्यवहार एवं दूरभाष द्वारा हमारा सम्बंध निरंतर बना रहेगा।

अर्ध रात्रि के पश्चात् एक बज चुका था। नववर्ष का आगमन हो चुका था। रवि ने विदा मांगी और कैथी उसे अपनी कार से उसके होटल छोड़ने आई। एक बार फिर भविष्य में संपर्क बनाये रखने के वादे के बाद दोनों ने अश्रुपूर्ण शब्दों में एक दूसरे से विदा ली।

प्रातःकाल रवि अपने होटल से टैक्सी लेकर सिडनी हवाई अड्डे पहुंचा और सानफ्रांसिस्को की ओर उड़ान प्रारंभ की। लम्बी हवाई यात्रा में अपने ऑस्ट्रेलिया निवास का घटना–क्रम उसके समक्ष घूमने लगा। वह सानफ्रांसिस्को की एक अंतर्राष्ट्रीय इंजीनियरिंग कंपनी में कार्यरत था। उसे तीन माह के दायित्व पर सिडनी में एक विशेष खनिज योजना पर कार्य करने के लिए भेजा गया था। इसी योजना के लिए कम्पनी ने सिडनी हार्बर के पार एक अस्थायी, अल्कालिक कार्यालय भी स्थापित किया था।

इस कार्यालय में उसका पीटर नामक एक ड्राफ्टमैन से संपर्क हुआ। उसे रवि को ड्राइंग इत्यादि बनाने में सहायता करने के लिए नियुक्त किया गया था। वह एक संकुचित विचार का भेदभावी व्यक्ति था। भारतीय होने के कारण वह रवि को हेय समझता था तथा समय–2 पर भारतीयों की निर्धनता और विगत कालीन पराधीनता पर अशोभनीय तथा निरादर पूर्ण व्यंग भी करता रहता था। रवि उसकी इस प्रकार की बातों को प्रायः अनसुनी कर देता था और अपने काम से काम रखता था।

सिडनी आगमन के कुछ दिनों पश्चात् रवि को एकाकीपन जातीयता, राष्ट्रीयता, तथा धार्मिक भेदभाव की अनुभूति होने लगी। उसे चिंता होने लगी कि वह कैसे हार्बर के पार उस होटल में पूरे तीन माह काटेगा। मानसिक असवाद के कारण शारीरिक भार भी घटने

लगा। सौभाग्य से, इसी बीच जॉन नामक एक दूसरे ऑस्ट्रेलियन से उसका परिचय हुआ। जॉन हर दूसरे तीसरे सप्ताह अपने व्यवसाय सम्बंधीकार्य से मेलबर्न से सिडनी आया करता था और तीन चार दिन रवि के होटल में ही ठहरता था। जॉन भारत में भी रह चुका था और बहुत स्वतंत्र विचारों का, स्नेही व्यक्ति था। जब वह सिडनी में होता था, तो रवि को अपने साथ इधर–उधर ले जाता था। उसके मनोरंजन का पूरा ध्यान रखता था। वह रवि की स्थिति को और उसकी एकांत–जनित मानसिक पीड़ा को भलीभांति समझता था। रवि को आश्चर्य होता, ''कितना अंतर है एक ही देश के दो व्यक्तियों, पीटर और जॉन, की विचारधारा और व्यवहार में?'' जॉन ने रवि का परिचय कैथी से कराया? जो उसकी पत्नी की छोटी बहिन थी। कैथी रवि के होटल से लगभग दो मील दर अपार्टमेंट में अकेली रहती थी और सिडनी में कार्यरत थी। रवि की भांति कैथी भी अविवाहित थी।

कैथी रवि की समायु थी। वह स्वभावतः एक संयमी, उदार तथा सात्विक वृत्ति की युवती थी। उसकी वार्तालाप में निस्वार्थ प्रेम, अपनत्व, और सहानुभूति झलकती थी। उसका निवास–स्थान समीप ही था, अतः वह रवि से प्रायः दिन प्रति दिन मिल लेती थी। शनिवार और रविवार को उसे सिडनी के समीपवर्ती मनोरंजक स्थानों पर ले जाती थी। वह पाश्चात्य वातावरण में पली बड़ी हुई थी, फिर भी भारतीय संस्कारों को अत्यधिक मूल्य देती थी। सनातन धर्म तथा हिन्दू संस्कृति पर रवि से प्रायः वार्तालाप करती रहती थी। धीरे–2 वह रवि के सीधे–सादे, साधारण रहन सहन, सरल जीवन–चर्या तथा विद्वत्ता से प्रभावित हो गयी थी। रवि उसकी उदारता, सहानुभूति, तथा सहायता के लिए बहुत आभारी था और उसके विचारों का अत्यंत आदर करता था।

सानफ्रांसिस्को अपने अपार्टमेंट में पहुँच कर उसे लगा कि यहाँ आकर तो वह सिडनी से भी कहीं अधिक एकाकी हो गया है। कैथी के अल्प–कालिक मधुर मिलन की स्मृति उसे पुनः उद्विग्न करने लगी। रह रह कर उसका मन उसी की ओर भागने लगा। प्रायः अपनी मनःस्थिति की उर्वशी–पुरुरवा और चित्रलेखा–बीजगुप्त से तुलना करने लगता। उस से परिणय–बंधन की कल्पना भी करने लगता। किन्तु तत्काल ही उसे अपने निजी जीवन तथा कैथी के पाश्चात्य जीवन के अंतर का आभास भी होता; जैसे अकस्मात् ही किसी गहन स्वप्न से आँखें खुली हों, ''अरे, परिणयन सम्बंधी प्रकरण तो कभी आया ही नहीं मेरे और कैथी के बीच; फिर यह काल्पनिक और अव्यवहारिक उत्कंठा कैसी?''

उसका जन्म भारत की स्वतंत्रता से पूर्ण पंजाब के एक छोटे से गाँव, हलवान में हुआ था। परतंत्र भारत में इस श्रेणी के गाँव का जीवन आर्थिक तथा अन्य घरेलू सुविधाओं की दृष्टि से निम्न–स्तरीय कहा जा सकता है। उसके पिताश्री प्रारंभिक पाठशाला में प्रधानाध्यापक थे। ज्येष्ठ भ्राता एक साधारण अध्यापक और माताश्री एक सद्गृहणी। दो छोटी अविवाहित बहनें थीं। अधिकांश ग्रामीण महिलांए बच्चों का परिपालन, घर की चक्की पर आटा पीसना, भोजन बनाना, बर्त्तन तथा कपड़ों की सफाई, सिलाई व कढ़ाई, कपास ओट कर रूई निकालना, कताई, इत्यादि कार्यों में व्यस्त रहती थीं। ग्रामीण घरों में विद्युत और विद्युत–चालित उपकरणों की कोई सुविधा उपलब्ध नहीं थी। रवि जैसे बालकों के मनोरंजन के लिए सपेरों की बीन–वाद्य, बन्दर और भालू के नृत्य, जादूगर के खेल, राजकीय नहर में स्नान और मज्जन, हस्त–निर्मित, गिल्ली डंडा, और कबड्डी के खेल, ग्रामीण गायकों के गीत, और कभी2 होने वाली रामलीला इत्यादि थे। पूरे गाँव में केवल एक दुकान थी जहाँ अनाज या पैसों से दिन प्रतिदिन की आवश्यकता की कुछ वस्तुएं क्रय की जा सकती थीं। अधिकतर आवश्यकताओं का सामान समीपवर्ती छोटे नगरों से लाया जाता था। यातायात का साधन प्रायः बैलगाड़ी या कभी2 ऊँटगाड़ी होती थी। गाँव की सीमा तक पक्की सड़कें नहीं थीं। बड़े नगरों तक प्राइवेट बस सेवा उपलब्ध थी। ग्रामीण जनता को रेडियो, टेलीफ़ोन, बैंक, बीमा इत्यादि से कोई संपर्क या परिचय नहीं था। पूरे गाँव केवल एक सामूहिक पेंडुलम क्लॉक थी। गाँव में प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से परिचित था। एक दूसरे का सहायक था। एक दूसरे के सुख, दुःख, विवाहोत्सव तथा पूजा इत्यादि में भाग लेते थे। ग्रामीण समाज औपचारिकता, कृत्रिमता, तथा बाह्यडम्बर के आवरण से अछूता था। सारा समाज सामान्यतः तीन भागों में विभाजित था, उच्च जाति का हिन्दू उपसमाज, अछूत हिन्दू उपसमाज, और मुस्लिम उपसमाज। गाँव में तीनों उपसमाजों के लिए अलग–अलग तीन कुएं थे, जहाँ से प्रातः और सायंकाल पानी लाकर पीतल या मिट्टी के पात्रों में रखा जाता था। ब्रिटिश शासन के आतंक एवं अनुशासन के कारण तीनों जन समुदाय तथाकथित संयम से रह रहे थे, यद्यपि आन्तरिक भेदभाव और वैमनस्य नित्यप्रति के व्यवहार में सुप्रत्यक्ष था।

हिन्दू समाज में, विगत शताब्दियों के कुछ मुस्लिम शासकों के क्रूर तथा बर्बर व्यवहार के प्रति आक्रोश और दबा दबा सा वैमनस्य अभी भी विद्यमान था। 1947 की क्रांति से सजग तथा सुचारु रुप से शासन चलाने में तत्पर, ब्रिटिश सरकार साम्प्रदायिक भेदभाव और उपद्रवों को दबाये रखना चाहती थी। अतः उन्होंने पूर्व स्थापित मुस्लिम व्यवस्था में कम से कम परिवर्तन करने का प्रयास किया था। उदाहरणार्थ, स्थानीय स्तर की राजकीय संस्थाओं तथा न्यायालयों में उर्दू लिपि और भाषा का उपयोग रखा गया था। फलस्वरुप, जनसाधारण में हिंदी का उपयोग क्रमशः कम होता जा रहा था और फ़ारसी शब्दों का अधिक समावेश था। राजकीय नौकरियों में अपेक्षाकृत अधिक वरीयता पाने के लिए रवि के ज्येष्ठ भ्राता की प्राथमिक भाषा उर्दू तथा माध्यमिक भाषा हिंदी रखी गयी थी। उच्च संस्थाओं तथा न्यायालयों की भाषा अंग्रेजी थी। इस कारण भी हिन्दुओं में कुछ असंतोष व्याप्त था।

अपने बाल्यकाल की और यहाँ तक की उस कालकी भी, आर्थिक स्थिति और जीवन पद्धति की स्मृति में डूबा रवि सोचने लगा, ''कैथी एक सुंदर, सरल, तथा उदार युवती है, किन्तु वह पाश्चात्य समृद्ध समाज में पली है। उसे अपने साथ अपनी निम्नस्तरीय परिस्थिति में घसीटना उसके साथ अन्याय होगा। फिर, उस से परिणय के सन्दर्भ में कोई विमर्श भी नहीं हुआ है। अतः, उस से अपना सम्बंध केवल मैत्री तक ही सीमित रखना उचित होगा।'' इस निश्चय से उसके व्यथित तथा भ्रमित मन को कुछ शांति मिली।

जनवरी का महीना था। उत्तरी अमेरिका के कुछ क्षेत्र में शीत और हिमपात प्रारम्भ हो चुका था। रवि को एक व्यावसायिक कांफ्रेंस में टोरंटो (कनाडा) जाने का अवसर मिला। वहाँ एक भारतीय मित्र, डॉक्टर गुप्ता, ने उसके स्वागत में एक डिनर पार्टी अपने निवास स्थान पर आयोजन किया। पार्टी में कुल मिलाकर सोलह भारतीय व्यक्ति आये थे। इन में सात दम्पतियाँ थीं और रवि के अतिरिक्त एक अन्य अकेली युवती थी, जिसने डॉक्टर राकेश तथा सीमा माथुर के साथ ही गृह प्रवेश किया था। पृथानुसार, रवि का सब अतिथियों से परिचय कराया गया। वह स्तंभित रह गया, जब उस अकेली युवती ने अपने परिचय में प्रत्युत्तर दिया, ''आई एम् हेमलता अग्निहोत्री; मैं यहाँ हाई स्कूल में अध्यापिका हूँ।'' ''हेमा, तुम!'' रवि भौंचक्का सा चिल्लाया और प्रसन्नता से अभिभूत। लेकिन युवती ने जबाव नहीं दिया तब अकेला एक कुर्सी पर बैठ कर ध्यानमग्न हो गया।

बारह–वर्षीय रवि अपने गाँव के पास के स्कूल से मिडिल अर्थात् वर्नाकुलर फाइनल की परीक्षा में प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण हो चुका था। गाँव के निकट पंद्रह कोस तक कोई स्कूल नहीं था। अतः, उसे हाई स्कूल की पढ़ाई हेतु उसके मामाश्री, वेद वशिष्ट, के गाँव गढ़ी भेजा गया था, जहाँ केवल एक कोस से कम दूरी पर एक नया हाई स्कूल खुला था। उसके मामाश्री की आर्थिक स्थिति तो बहुत अच्छी नहीं थी, किन्तु वहाँ रवि के प्रति स्नेह की बहुतायत थी। वह निश्चिंत होकर पढ़ाई कर सकता था। धीरे2 अन्य कई विद्यार्थी उसके पास शिक्षा सम्बंधी सहायता के लिए आने लगे। आस पास के परिवारों में उसकी प्रतिभा तथा लगन की सराहना होने लगी और गढ़ी–निवासी एक समृद्ध तथा सम्मानित व्यक्ति, श्रीनिवास अग्निहोत्री को उसका परिचय मिला। उन्होंने रवि से अपनी अष्ट–वर्षीय पुत्री हेमा, को पढ़ाने का आग्रह किया। अपने मामाश्री की सहमति से रवि ने हेमा का शिक्षण प्रारम्भ किया। चार वर्ष के गढ़ी के निवासकाल में रवि और हेमा में घनिष्ट मित्रता हो गयी थी। प्रायः, दोनों साथ साथ खेलते कूदते, इधर उधर घूमते और बाल्यकाल के मनोरंजनों में भाग लेते थे।

रवि की हाई स्कूल की शिक्षा पूर्ण हो चुकी थी और उसे गढ़ी से विदा लेकर आगे की शिक्षा तथा आगामी पथ का निश्चय करना था, जो भविष्य के गर्भ में निहित था। वह विदाई लेने के लिए हेमा के घर पहुंचा, ''हेमा, तुम अपनी अग्रिम पढ़ाई इसी प्रकार जारी रखना। वैसे, तुम करना क्या चाहती हो अपने आगे के जीवन में?'' ''मुझे तो पढ़ लिखकर एक अध्यापिका और सद्गृहणी बनना है और तुम क्या करोगे रवि?'' ''मेरा भविष्य तो संयोग और नियति के अधीन है, हेमा। वैसे रुचि तो मेरी भी अध्यापन कार्य में ही है।'' अति उत्तम। हो सकता है, हम दोनों साथ साथ एक अध्यापक और एक अध्यापिका बन कर रहें, हमारा विवाह हो जाये और हम सदा एक ही घर में रहें। कितना अच्छा होगा रवि? पर, अभी तो मैं छुट्टियों में अपनी माताश्री के साथ कीनिया जा रही हूँ। वहाँ हमारा विस्तृत और समृद्ध पारिवारिक व्यवसाय है। हमें छोड़ कर हमारे परिवार के सभी लोग वहाँ ही रहते हैं। लौट कर मैं तुम्हारी मामी से तुम्हारी गति विधियों और कार्यक्रम का पता लगाती रहूँगी। तुम आते रहना यहाँ।'' विदाई के समय दोनों को बहुत दुःख हुआ दोनों के कपोलपृष्ठ अश्रुजल से सिंचित हो गए। उस समय रवि षोडश वर्षीय था और हेमा बारह बर्षीया।

पार्टी के उपरांत, डॉक्टर गुप्ता के निवास–स्थान से टोरेंटो के अपने होटल में पहुँचते–2 रवि को रात्रि के बारह बज गए थे। कमरे में पहुचने के कुछ ही क्षणों पश्चात् एक फ़ोन कॉल ने उसे चौंकाया, ''रवि, तुम कल मेरे यहाँ लंच के लिए आ सकते हो? हमें बहुत सी बातें करनी है।'' रवि ने बिना कुछ सोचे निमंत्रण स्वीकार कर लिया। हेमा का पता और फ़ोन नंबर ले लिया। मध्यनिशा बीत चुकी थीं और वह होटल के शांत, तिमिराच्छादित कक्ष में निद्राहीन अवस्था में विगत पंद्रह वर्षों की स्मृति विचरने लगा...क्रमशः

आलेख

अंबेडकर के अर्थशास्त्री विचार

डा. शरद रंजन त्यागी
एसोसिएट प्रोफेसर
जाकिर हुसैन संध्या कॉलेज, दिल्ली
मो0 : 9136145205

डॉ0 भीमराव अंबेडकर का जन्म 14 अप्रैल 1891 को तथा मृत्यु 6 दिसम्बर 1956 को दिल्ली में हुई। दलितों के मसीहा होने के साथ–साथ वे एक प्रख्यात अर्थशास्त्री भी थे।

डॉ0 भीमराव अंबेडकर का दर्शन और जीवन साहस और विश्वास की प्रतिमूर्त्ति है। अंबेडकर जी ने गरीब और आर्थिक पृष्ठभूमि के कारण बहुत सी मुसीबतों और कष्टों पर विजय हासिल करते हुए ज्ञान प्राप्ति के लिए स्वयं को समर्पित कर दिया।

इन्हौंने मुंबई के एलफिंस्टन कॉलेज से स्नातक की उपाधि और बाद में न्यूयार्क के कोलंबिया विश्वविद्यालय में प्रवेश के लिए छात्रवृति प्रदान की गई। जहाँ से उन्हें डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त हुई। 1916 में यूनाइटेड किंग्डम चले गए, जहाँ उन्हौंने लंदन स्कूल ऑफ इक्नॉमिक्स में अध्ययन किया और बाद में बैरिस्टर एट लॉकी उपाधि प्रदान की गई। डॉ0 भीमराव अंबेडर ने निरक्षरता, अज्ञान और अंधविश्वास को सामाजिक रुप से पिछड़ों की मुक्ति का साधन मानते थे। उन्हौंने समाज के कमजोर वर्गो के शैक्षिक हितों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से 1945 जन शिक्षा सोसायटी की स्थापना की।

डॉ0 भीमराव अंबेडकर का सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण योगदान भारत के संविधान की प्रारुप समिति के अध्यक्ष के रुप में उनकी भूमिका थी। भारी दूरदर्शिता नया ..... से डॉ0 भीमराव अंबेडकर ने न केवल संविधान सभा के माध्यम से एक असाधारण प्रारुप पारित करवाया और अपने सिद्धांतो और कारणों को भी प्रस्तुत किया।

वे भारत का स्वरुप बदलना चाहते थे वे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक बदलाव हर क्षेत्र में देखना चाहते थे।

अंबेडकर का सपना भारत को महान, सशक्त और स्वावलंबी बनाने का था। डॉ0 भीमराव अंबेडर की दृष्टि में प्रजातंत्र व्यवस्था सर्वोत्तम व्यवस्था थी। जिसमें एक मानव मूल्य का विचार है। सामाजिक व्यवस्था में हर व्यक्ति का अपना योगदान है। पर राजनीतिक दृष्टि से यह योगदान तभी संभव है जब समाज और विचार दोनों प्रण्यलॉगिक हो। आर्थिक कल्याण के लिए आर्थिक दृष्टि से भी प्रजातंत्र जरुरी है। आज लोकतांत्रिक और आधुनिक दिखाई देने वाला देश अंबेडकर के संविधान सभा में किये गए सभा वैचारिक संघर्ष और उनके व्यापक दृष्टिकोण का परिणाम है। जो उनकी देखरेख से बनाए गए संविधान में क्रियान्वित हुआ है। लेकिन वैसा संविधान नहीं बन पाया जैसा वे चाहते थे।

डॉ0 भीमराव अंबेडकर के आर्थिक विषयक लेंखो से ज्ञात होता है कि वे अर्थशास्त्र के ढाँचे के भीतर एक कल्पनाशील एक सजग विश्लेषक है। इनकी पुस्तक ''द प्रॉब्लम ऑफ द रुपी'' 1923 में इंग्लैड में प्रकाशित हुई जब राष्ट्रवादियों तथा ब्रिटिश सरकार के बीच विनिमय दर के बारे में संघर्ष चल रहा था। इसमें इन्होंने वर्षों से चली आ रही विदेशी मुद्रा की कटु आलोचना की गई थी। इनका कहना था कि खुली अर्थ व्यवस्था ने अंर्तराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धा कर सकता है। उन्होंने यह भी कहा कि रुपये के अवमूल्यन की अवधि के समय भारतीय नियति को तथा उत्पादकों को फायदा हुआ।

डॉ0 भीमराव अंबेडकर ने अपने लेखन में ऐसे अनेक सूत्र दिये जिनके आधार पर भारतीय इतिहास को हम पूंजीवादी विवेचकों के दुष्प्रभाव से मुक्त कर सकते है। डॉ0 भीमराव अंबेडकर का नाम एक ऐसे समाज सुधार, विवेचक, राजनेता, अर्थशास्त्री में रुप में हमेशा याद रखा जायेगा।

कहानी

एक सर्द दिन, तुम्हारे बिन

सीमा 'असीम'
208डी, कॉलेज रोड, बरेली
मो0 : 09458606469

जनवरी का महीना। कड़कड़ाती ठंडक। दिन रात एक समान से लगते हैं इन दिनों, क्योंकि सूर्य देव के तो दर्शन ही नहीं होते कई–कई दिनों तक, कभी–कभी तो पूरा महीना यूँ–ही गुजर जाता है। सूरज महाराज ऐसे अस्ताचल में समाते कि उदय होने का नाम ही न लेते। काले बादलों का कोहरा झर–झर झरता रहता और आकाश से नाम मात्र की रोशनी भी न फूटती। ऐसे ही सर्द दिनों में एक रात जब मैं घर में अकेली थी...

मैं रजाई लेकर दीवान पर लेटी हुई थी, टेबुल लैम्प को सिरहाने रखकर कुछ पढ़ और लिख रही थी।

उन्हीं पलों में न जाने कैसे मेरी आँख लग गईं। मैं निद्रा देवी की गोद में समा गई। शायद! रजाई की गरमाहट और तुम्हारी याद की तीव्रता मेरे दिलो दिमाग पर छा गई थी, जो उस समय मेरी आँखें खुल ही न रही थी। मैं तो नेट चलाकर तुम्हारे भेजे मेल चेक कर रही थी कि न जाने कब नींद मुझे अपने आगोश में समेट ले गई।

मैं रजाई के अन्दर थी, परन्तु उस रजाई में तुम्हारी बाहों की गरमाहट महसूस करते हुए, बेफिक्र हो उस नींद का आनन्द लेने लगी।

डायरी, किताबें, लैपटाप और टेबुल लैम्प मेरे सिरहाने यूँ ही खुले पड़े हुए, जलते हुए ही और मुझे होश ही नहीं था। मैं तो बिचर रही थी तुम्हारी बाहों में सिमट कर, उस धड़कन में, जो मेरा साथ पाकर तीव्रता से धड़क रहा था। जिसमें हर धड़कन के साथ मुझे अपना ही नाम सुनाई दे रहा था। उस सर्द अन्धेरी रात में भी, तुम्हारी व चौड़ी सी छाती, मुझे निडरता का एहसास करा रही थी और मैं बिस्तर पर सब कुछ यूँ ही बिखरा छोड़कर, बिखरने लगी थी, कतरा–कतरा होकर तुम्हारे नर्म, गर्म आगोश में।

अचानक मेरी आँखें खुल गईं। कुछ अकुलाहाट और घबराहट के साथ।

मैंने सोचा कि मैं कहाँ हूँ? उस वक्त मैं खुद को ढूँढ़ रही थी, टटोल रही थी अपने आप को व उस स्थान को जहाँ मैं लेटी हुई थी। मुझे कुछ नजर ही नहीं आ रहा था। नितान्त अकेलापन सा लग रहा था। अभी तो तुम मेरे साथ थे, कहाँ चले गये अचानक? मैं आँखें खोलकर, चौड़ी करके चारों ओर नजरें घुमाकर देख रही थी, किन्तु मुझे सिवाये अन्धकार के कुछ नजर ही नहीं आ रहा था। मैं घबराकर उस हाड़ कपाती सर्दी में भी पसीने से लथपथ हो गई।

यह सब क्या है?

मैं कहां हूँ?

अँधेरे के सिवाये कुछ भी नजर नहीं आ रहा है।

तभी उस सुनसान से माहौल में बिखरे पड़े सन्नाटे को तोड़ती हुई, अलार्म घड़ी ने अपनी मधुर ध्वनि मेरे कानों में घोल दी। मैं समझ गई कि मैं कमरे मे ही हूँ। मैं निःश्चल और शान्त होकर उस ध्वनि की चाहत में पड़ी थी, जब घड़ी के घंटे बजेंगे और मुझे बतायेंगे कि इस समय कितने बजे हैं? तभी एक–एक कर उस घड़ी ने तीन घंटे बजाये। अरे! तो क्या मैं चार धंटे की सुखद, सुहानी और रोमांटिक नींद ले चुकी थी। कितनी गरमाहट थी उस आगोश में, जो इस रजाई में नहीं है। मैं एकदम से ठंढ़क के अहसास से भर गई।

मैंने आसपास के माहौल को टटोला, मैं तो पढ़ रही थी, लैपटाप पर नेट चलाकर कुछ लिख भी तो रही थी। अरे हाँ याद आया, मेरा टेबुल लैम्प भी जल रहा था और मेरा मोबाईल, वह भी पास में ही रखा हुआ था कि कहीं तुम्हारा गुड नाइट करने का कोई मैसेज या फोन न आ जाये। वह सब कहाँ चला गया? मुझे कुछ नजर क्यों नहीं आ रहा?

क्या मैं वास्तव में मैं देख नहीं पा रही हूँ?

उस प्रकार से ही, जिस प्रकार मैं तुम्हारे प्रेम में अन्धी हो गई हूँ?

एकदम अंधी और उस प्रेम में निरंतर डूबती ही जा रही हूँ, गहरे ही गहरे, सागर की अनंत गहराईयों की तरह। बिना आगे–पीछे सोंचे। कुछ परवाह ही कब है मुझे? किसी भी अंजाम की।

अरे! मेरी इन आँखों को क्या हुआ? जो जलती हुई रोशनी को भी नहीं देख पा रही हैं। टेबुल लैम्प तो जल ही रही थी न, फिर यह सब क्या हुआ? मैं फिर सोचने लगती हूँ।

कमरे में मेरे सिवाय कोई दूसरा तो है भी नहीं, जिसने लाइट बन्द की हो। कोई आ भी नहीं सकता। आयेगा भी कैसे? मैं तो अन्दर से दरवाजा बन्द करके लेटी थी।

मैंने अपने हाथ को बढ़कार टटोलना चाहा, तो पाया वहाँ तो सब कुछ वैसे ही फैला पड़ा हुआ है, जिस प्रकार मैं छोड़कर सो गई थी। सामान तो सब वैसे ही रखा हुआ था, किन्तु नजर कुछ नहीं आ रहा था। क्या लाइट चली गई? लेकिन टेबुल लैम्प तो लाइट जाने के बाद इन्वर्टर से भी जलती रहती है, आज वह क्यों नहीं जल रही?

मैं हाथ बढ़ाकर मोबाइल को उठाती हूँ और उसे ऑन करती हूँ, ताकि उसकी मन्द सी रोशनी में ही उठकर देखूँ कि क्या बात है?

परन्तु यह क्या?

मोबाईल ऑन ही नहीं हो रहा है, क्या इसकी बैट्री भी डिस्चार्ज हो गई?

इन्हीं सब चिन्ताओं में डूबकर मैंने अपनी आँखें बन्द कर लीं और रजाई के अन्दर मुँह घुसा लिया। बाकी की रात इसी तरह चिन्ताग्रस्त हो गुजार दी। जब घड़ी ने सात बजे के अलार्म के साथ, सात घण्टे बजाये, तो मैं उठकर बाहर को निकल आई।

हाँलाकि इन कोहरे भरे दिनों में, दिन और रात में कुछ खास अन्तर नहीं होता, फिर भी सुबह तो हुई ही थी, आस की किरणें तो फूटी ही थीं, भले ही सूर्य की किरणें आसमान से घरती पर ना उतरी थीं।

गर्मियों में जहाँ सुबह पॉच बजे से ही चहल–पहल शुरु हो जाती है, और लोग अपनी दिनचर्या में लग जाते हैं, वहीं सर्दियों में खासतौर से जनवरी के महीनें में, सात बजे तो कोई रजाई से बाहर को मुँह भी नहीं निकालना चाहता है, बिस्तर छोड़ना तो दूर की बात है और कमरे से बाहर निकलने के लिए तो बहुत हिम्मत जुटानी होती है। नौ तो यूँ ही बज जाते हैं, लोगों को अपनी दिनचार्या शुरु करने में। इतनी सर्दी में हाथ पॉव चलते ही कब हैं? जाम से हो जाते हैं।

जब पन्द्रह दिनों से सूरज ही न निकला हो, तो फिर लोगों का क्या हाल होगा? ब्लोअर और अंगीठी के सहारे हाथ पॉवों में कुछ रवानगी आ जाती है। चाय कॉफी का अगर सहारा न हो तो शरीर ही न चले।

खैर मैं तो अपनी सारी ऊर्जा समेट कमरे से बाहर निकल आई थी। लाईट चेक की, पर यह क्या? बिजली गुल, सर्दियों में भी लाइट का यह हाल है तो गर्मियों में क्या होगा? इतनी सर्दी में बिजली का जाना समझ नहीं आता।

मैंने जल्दी से इन्वर्टर चेक किया। वह डिस्चार्ज हो चुका था। अब तो हाथ पर हाथ धरकर बिजली के आने का इन्तजार करने के सिवाय कोई उपाय ही न सूझ रहा था, क्योंकि सब कुछ चार्ज तो बिजली के आने पर ही होगा। बिना कुछ भी चार्ज किये न तो तुमसे बात हो पायेगी और न ही चेट। मैसेज भी तो नहीं कर पॉऊगी।

मैं घबरा उठी, बेचैनी से भर गई। वह तो मेरा इन्तजार कर रहे होंगे। मेरे गुड मॉर्निं मैसेज का।

क्या करुँ?

कैसे करुँ?

कुछ समझ ही नहीं पा रही थी। घर में कोई दूसरा भी तो नहीं, जो मेरी समस्या सुलझाने में कुछ मदद करता। खैर, मैं बार–बार लाइट चेक करती, कभी मोबाईल को उठाकर ऑन–ऑफ करती। बैट्री निकाल कर देखती कि शायद कुछ मिनट को ही चल जाये। इन्वर्टर का बटन बार–बार दबाकर देखती, कि शायद वह ही कुछ देर को ऑन हो जाये, तो मोबाईल चार्ज कर लूँ, एक मैसेज करने भर को ही सही।

पर कहाँ? कुछ भी तो संभव नहीं हो पा रहा था। सब असंभव ही जान पड़ रहा था। आसमान में छाये कुहासे की तरह मन में भी गहन अन्धकार भर रहा था। खुद से ज्यादा चिन्ता तो उनकी हो रही थी। मैं उनकी परेशानी में घुल रही थी, तो वे कितना परेशान हो रहे होंगे, न जाने क्या कर रहे होंगे, पता नहीं चाय भी ली होगी या नहीं। नाश्ता भी किया होगा या नहीं।

नाश्ता शायद तो क्या? वास्तव में नहीं किया होगा। ऐसे ही चिन्ता में बैठे होंगे। अब तो लंच का समय भी होने को आया। कैसे खायेंगे वे कुछ भी मेरे से बात किये बिना।

न जाने कितनी बार फोन मिलाया होगा, मोबाईल बन्द पाकर घबरा रहे होंगे, फिर कितने ही मैसेज और बाईस कॉल, भेज दिये होंगे। अब मैं खुद से ज्यादा उन्हें समझने लगी थी, वैसे मैं खुद को भी कहाँ समझती थी जब से तुम्हें जना पहचाना, तब से ही कुछ–कुछ खुद को पहचानने या फिर जानने समझने की कोशिश करने लगी थी। लेकिन तुम्हें जान कर ही तो जाना था खुद को। फिर सोचती, कितनी पागल हूँ मैं। कहीं वे जरूरी काम से गये होंगे काम निबटाने में लगे होंगे, न कि मेरी तरह हाथ पर हाथ धरे मुझे ही याद करने में लगे होंगे।

लेकिन मेरा मन, वह भला कहाँ मानने वाला; क्योंकि इसमें तुम इस कदर समा गये हो, जहाँ सिर्फ तुम ही तुम तो हो। वहाँ तुम्हारा ही बसेरा है। अब मेरी सोंचने समझने की शक्ति खोने लगी थी।

मेरे बायें अंग जितनी तेजी से फड़क रहे थे, उतनी ही बेसब्री

से मेरी धड़कनें बढ़ती जा रही थी। मैं घबराहट में उठ कर इधर उधर टहलने लगी। मैं कितना असहाय महसूस कर रही थी आज अपने आप को। इस दुरुह स्थिति में तो कभी भी नहीं आई थी। ऐसी सिचुऐशन तो कभी नहीं हुई और न ही कभी सामना ही हुआ था इतनी परेशानियों से एक साथ।

मन को समझाने की कोशिश करती।
धैर्य! धैर्य! धैर्य!

सब कुछ ठीक होने ही वाला है। जो देर हो रही है सो हो रही है। जो समय जा रहा है वह जा रहा है बस। हमेशा थोड़े ही रहने वाला है यह सब। वक्त बदलता है। समय अपनी रफ्तार से चलता रहता है। अच्छे–बुरे, सही या गलत का भान कराता चलता है।

यह समय भी अब जाने ही वाला है, अच्छे समय को लाकर। बुरे समय को मिटा देगा, हमेशा के लिए। भले ही थोड़ी सी देर है, पर अंधेर नहीं।

ऐ मन, थोड़ा तो धीरज धरो।

बस अब गया ही समझो यह समय। शायद मन कुछ समझ जाये इस तरह समझाने से, परन्तु बिल्कुल भी नहीं समझा।

इस तरह कहाँ समझता है मन, यह मन भी बड़ा मन का होता है। मेरे कहने समझाने का उसे क्या फर्क पड़ता है।

यह विरह वेदना तो वही समझ सकता है, जिसने झेली होगी या झेल रहा होगा, दूसरा क्या जाने, जिसने इसे न जाना न समझा। मुझे वह कहावत याद आ गयी, ''वह क्या जाने पीर पराई जिसके पैर न पड़ी विबाई।''

कितनी असहनीय पीड़ा होती है। इस तरह प्रेम में विरह की। यह उस दिन ही जान व समझ पाई थी। हर तरह से मन को समझाकर भी मन को न समझा पा रही थी।

आँखों से आँसू बेतहाशा बहने लगे थे। जब हम बेहद असहज और असहाय हो जाते हैं, तो ये आँसू ही हमारा संबल बन जाते हैं। अकेलेपन के अहसास को दूर कर देते हैं और पीड़ा को आँसूओं के रूप में बहा देते हैं। बहुत ताकत होती है इन आंसुओं में। इनकी कीमत तो वही समझ सकता है, जो इनका साथ पाता है। कुछ पल को ही सही, सहज तो महसूस कर लेता है अपने आप को। जिन्होंने इन्हें सिर्फ आँसू न समझ, एक सच्चा साथी समझा होगा, वे कुछ हद तक धीरज बँधा ही लेते होंगे अपने मन को। भले ही कुछ पल को ही सही, उस जान ले लेती विरह वेदना से थोड़ी राहत तो पा ही लेते होंगे।

सच ही ''दु:ख की घड़ियों में जब हमारे अपने भी साथ छोड़ जाते हैं, तो यह आँसू ही हमारे सच्चे साथी होते हैं और तब तक साथ निभाते हैं, जब तक दु:ख की घड़ी छट नहीं जाती। गुजर नहीं जाते वे पल, जो हमें दु:सह दुख की काली घटाओं में कैद कर लेते हैं। सब कुछ धोकर मिटा कर, उस बदरंग बदरी से निजात दिला कर उज्जवल, साफ और निखरा हुआ कर देते हैं, फिर हम खुशी से चहक उठते हैं और हँसी हमारा साथ देने को आतुर हो उठती है।''

परन्तु इतना रोने के बाद भी मन शान्त नहीं हो रहा था। बेचैनी बढ़ती ही जा रही थी और मुझे सांस लेने में तकलीफ होने लगी थी, दम घुटता हुआ सा लग रहा था। मैंने उठकर सब दरवाजे–खिड़कियाँ खोल दी थीं। थोड़ी सी ताजी हवा का झोंका पाने को खिड़की से सटकर खड़ी हो गई। किन्तु सर्दियों में कभी–कभी हवा भी सख्त और बेरहम हो जाता है। बर्दाश्त के बाहर होती घुटन, मेरी मांपेशियों में अकड़न पैदा करने लगी थी और दिमाग की नसें तनी हुई सी लग रही थी। लगा, अब अगर एक पल भी इस माहौल में रही तो मेरा अन्त निश्चय है।

ऐसा सोंचते हुए मैंने अपने को कुछ संयत करने का यत्न किया, किन्तु सब व्यर्थ। मैं ऐसे ही दरवाजा खोल बाहर निकल पड़ी। उन्हीं रात के कपड़ों में चलती हुई बाहर सड़क पर बनी जेब्रा क्रासिंग को पार करके सड़क के दूसरी ओर आ गई। फुटपाथ पर कदम रखने को भी जगह नहीं थी। पूरा फुटपाथ सामान बेचने वालों से भरा हुआ था। वे आवाजें लगा लगाकर सामान को बेचने की जद्दोजहद में लगे हुए थे। मूँगफली, फल, चाट, पकौड़ी के ठेले भी आस पास लगे हुए थे। इन सबके शोर शराबे के बीच, सड़क पर चलती कारें, बसें, बाइकें व ऑटो के हार्न की आवाजें मेरे विचलित मन को जरा भी ध्यान भग्न नहीं कर सकी थीं।

मैं तो इन सब से बेखबर अपनी ही धुन में चलती रही। ऐसे में मुझे वो पल अचानक से याद आ गये। जब मेरी परेशानी को देख तुम आगे बढ़कर अपनी बाहों में समेट कर, मेरे माथे पर चुम्बन जड़ देते थे। वह चुम्बन मेरी सारी तकलीफों, परेशानियों को पलभर में ही दूर कर देता था।

'औरत मर्द का इंसानी रिश्ता' ही तो आखिर इस दुनिया का सबसे बड़ा सच है। इसके अलावा तो सब झूठ हैं, छल है।

इन्हीं विचारों के झंझाबातों से जूझते हुए न जाने कैसे मैं एक इन्टरनेट कैफे के सामने आ खड़ी हुई, पता ही न चला। वहाँ पर धड़धड़ाते जैनरेटर के शोर से मेरी तन्द्रा भंग हुई। तब मेरी निगाह सामने लगी दीवार घड़ी पर चली गई। दोपहर के तीन बज रहे थे। इस मौसम में कब सुबह, दोपहर में तब्दील हो जाती है, इसका पता तो समय देखकर ही चल पाता है, अन्यथा पता ही न चले दिन और रात का।

वैसे भी इन सर्द दिनों में पता ही कब चलते हैं।

सुबह, दोपहर, शाम, रात।

सब यूँ ही ढ़लते चले जाते हैं। वैसे भी जबसे तुम गये हो तब से सिर्फ तुम्हारी याद के सहारे ही तो कट रहे हैं दिन।

उफ! यह दूरी भी कभी–कभी कितनी दु:खदायी हो जाती है। यंत्र चालित सी चलती हुई मैं एक कम्प्यूटर के सामने जाकर बैठ गई। अपनी आई. डी. डालने को जैसे ही की बोर्ड पर बटन दबाना चाहा कि मुझे ध्यान आया कि यहाँ इतने लोग हैं। ऐसे में क्या पता, उनका कोई पर्सनल मैसेज आया हो, तो कैसे पढ़ पाऊँगी, यहाँ पर इन सब लोगों के सामने। यह सोच, मैने कम्प्यूटर बन्द करने को माउस का बटन क्लिक ही किया था कि वहीं पर खड़ा लड़का बोल पड़ा, ''मैडम रहने दें, मैं काम करुँगा इस सैट पर।''

मेरे हटते ही वह उस पर बैठ गया था। मेरा तो इस ओर ध्यान ही नहीं गया था कि पीछे भी कोई खड़ा है। मैंने सोचा, चलो अच्छा ही हुआ, जो मैने अपनी आई डी न खोली।

रह–रह कर बस उनका ही ख्याल आ रहा था। क्या वह भी इतने ही बेचैन होंगे? क्या वह भी इतना ही परेशान हो रहे होंगे? हाँ, शायद! क्योंकि, 'दिल से दिल को राह' मिलती है न।

लेकिन उनके पास और भी तो ढ़ेरों काम होंगे करने को, फिर भी मेरी चिन्ता तो कर ही रहे होंगें।

वैसे देखा जाये तो एक औरत और मर्द के प्यार में बहुत अन्तर होता है। मर्द प्यार तो करता है, लेकिन कहीं न कहीं उसके प्यार में देह शामिल हो जाता है, और एक नारी तो सच्चे दिल और से पूरे मन से प्यार करती है।

सागर की अतल गहराइयों में डूबते हुए सिर्फ और सिर्फ प्यार ही प्यार। उसकी नजरों में रूहानी प्यार ही सच्चा प्यार होता है। शारीरिक प्यार तो मात्र क्षणिक आकर्षण होता है जो चिरकाल तक कहाँ जीवित रह पाता है, जबकि रूहानी प्यार सदैव जीवित रहता है, उसकी मौत ही कब होती है। वह तो हर जन्म में एक नये रूप में अवतरित हो जाता है। हाँ, यह अलग बात है कि प्यार के चरम में जिस्मों का शामिल हो जाना, उस प्रेम की मान मर्यादा को बढ़ा देने के समान होता है, क्योंकि तब वह प्रेम की पराकाष्ठा होती है और फिर वह असीमित हो जाता है। सीमाओं और रेखाओं से परे।

इसी ख्यालात में चलती हुई घर के दरवाजे पर आ खड़ी हुई। दरवाजा खोलकर अन्दर आई। शाम का धुँधलका गहरा गया था और मैं पूरा दिन यूँ ही सड़कों पर बेवजह घूमकर, भटक कर गुजार आई थी, फिर भी मन की चिन्ता, फिक्र, उलझन और परेशानी जस की तस बनी हुई थी, उसमें तो नाम मात्र का भी परिवर्तन नहीं हुआ था। मैं दर्द के अथाह सागर की गहराइयों में डूबते–उतरते गोते लगा रही थी। जो पीड़ा मैं झेल रही थी, उसे शब्दों में वर्णित करना तो पूर्णतया असम्भव ही जान पड़ता था। उन्हीं क्षणों में मैं अपने अन्त का विचार करने लगी थी। तभी किसी शायर की वह नज्म याद आ गई .... 'मरने वाले तो बेबस हैं जीने वाले कमाल करते हैं'

तब मैंने निश्चय कर लिया कि मैं जिऊँगी। मुझे जीना होगा तुम्हारे लिए सिर्फ तुम्हारे लिए।

यह अँधेरा तो क्षणिक है। छूट ही जायेगा, कुछ ही देर में घर जगमगा उठेगा और घर के रौशन होने के साथ ही मन भी रौशन हो जायेगा, चमक जायेगा, खिल उठेगा और एक खुशबू सी बिखर जायेगी चारो ओर। मैं अनायास ही सकारात्मक विचारों से भर गई। मेरे मन की नकारात्मक भावना पल भर में ही न जाने किधर विलुप्त हो गई। जिस मन को सुबह के समझाने में नाकामयाब हो रही थी, वही मन पल भर में ही न जाने कैसे मान गया था।

मैं कंबल लपेटकर सोफे पर बैठ गई और कैण्डिल की हल्की–हल्की सी रोशनी से जगमगाता वह कोना, जो प्रकाश से भरा हुआ था देख रही थी। ठीक उसी प्रकार मेरे मन में भी एक आशा की किरण जाग्रत हो उठी थी। लग रहा था कि अब तो लाईट बस आने ही वाली है। सोफे पर लेटते ही अचानक मेरी पलकें बन्द हो गईं और मेरी आँखें लग गईं। रात भर न सो पाने और दिन भर यूँ ही व्यर्थ भटकने के कारण, थकान मुझ पर हावी हो गयी थी। मैं निद्रा देवी की गोद में समा चुकी थी।

अलार्म घड़ी के तीन घंटों की ध्वनि बिखेरी मैं हड़बड़ाकर उठ बैठी।

देखा, पूरा घर दूधिया रौशनी से जगमगा रहा था। मैनें जल्दी से उठकर सब कुछ चार्जिंग पर लगा दिया। पूरा दिन गुजर चुका था संवादविहीन। जैसे ही सकारात्मक विचार मन में आये, तो मन खुश हो गया और सब सम्भव होता चला गया। पल भर में ही वह खुशियाँ हमें वापस मिल गईं, जिसके लिए मैं पूरा दिन भटकती रही। अब मैंने उन खुशियों को अपने दामन में समेटने की तैयारी पर थी, जो पिछले चौबीस घंटे के लिए मुझसे रुठ गयी थी। संवाद स्थापित करने को आतुर, मैंने सब कुछ ऑन कर दिया था। उसी समय दरवाजे पर किसी ने घंटी बजाई। कौन आया है ...इस समय?

मैंने दरवाजे की सिटकनी बड़ी हिम्मत करके खोली, सामने उनको आया देख, अपनी बाहें फैलाकर उनके गले से लग गयी। नम आँखों के साथ कहते हुए कि, ''अरे आप आ गये।''

''मैं गया ही कब था।'' पूरे जमाने का प्यार आँखों में भरते हुए हौले–हौले मेरे बालों को सहलाने लगे...।

असीम...! हाँ सीमा मैं ही हूँ।

कहानी

पहली खेप

डॉ0 प्रेमचन्द पाण्डेय
उर्दू बाजार लेन, सराय, भागलपुर–812002
मो0 : 9199003205

अब गाँव में मात्र चार प्राणी रह गए हैं। रतन, उसकी बीवी, आठ–दस साल का बेटा और छः साल की एक बेटी। स्कूल की छत और छत तक पहुँचाने वाली बांस की सीढ़ी इनके लिए लाइफवेल्ट साबित हुई। इनके अलावा इक्का दुक्का कोई है भी तो बस वे, जिनका मकान पक्के का है।

बाढ़ तो हर साल आती है इस गाँव में। मगर इस साल की तरह नहीं। इस साल तो लगता है गंगा जैसे पागल हो गई! सबको खाकर ही दम लेगी। यह तो पति–पत्नी ने होशियारी की और एक–एककर सारा सामान लेकर छत पर चले आए... वरना! जुगल की आशा में रहते तो सबकुछ देखते–देखते बर्बाद हो जाता।

घर में चारों और दो से तीन फीट तक पानी। दो रात तो तेतरी ने एक छोटी चौकी पर काटी। सर–सामान और बाल–बच्चों के साथ। उधर तो रतन भी नहीं था। फोन पर बाढ़ और आफत की खबर सुनकर जल्दी–जल्दी घर आया है। रतन घर आया है तो तेतरी को थोड़ा साहस हुआ, वरना अकेली वो क्या–क्या करती?

स्कूल की छत से ही तेतरी टीले की ओर निहार रही थी। वह जितनी बार नाव की ओर देखती, उतनी बार जुगल को गाली देती। पर इससे ज्यादा वह कर भी क्या सकती थी?

अन्तिम बार नाव खुली, तो तेतरी का धीरज जवाब दे गया। रतन के आते ही उसने पूछा– 'क्या कहा जुगल नें...?'

'क्या कहेगा ...हर बार टालता है।'
'अरे कहा क्या? सुनूँ भी तो ? ...'
'कहा, कल देखेंगे'
'कल देखेंगे .....क्या देखेगा....?
'सारा गाँव टिलहा कोठी पर पहुँच गया सुरक्षित'
सर–सामान गाय–बैल, खटिया–चौकी लेकर' मेरे लिए कहता है, देखेंगे।'
'अरे हड़बड़ाने से क्या होगा ...एक ही नाव है .... और सबको जान बचानी है ....'
''एक ही नाव क्यों है? सरकार और नाव क्यों नही देती?''
तेतरी ने रतन पर नजर टिकाते हुए कहा।

दुख और गुस्सा की इस घड़ी में भी रतन के होठों पर मुस्कुराहट तैर गई। वह क्या जवाब देता तेतरी को!

वह कैसे समझाए कि बाढ़–सुखाड़ से भी बड़े–बड़े काम हैं सरकार के पास। मंत्रीजी और मुख्य मंत्रीजी को कहीं शिलान्यास करना है तो कहीं उद्घाटन। विधायक और सांसद को अपनी पार्टी देखनी है, विधान सभा और लोकसभा में बाढ़ सुखाड़ पर प्रश्न पूछना है और सरकार को इसी विषय पर जवाब देना है। इससे समय मिले तब तो डूबते–भासते लोगों की खोज खबर ली जाय!

रतन है भी मैट्रिक पास। फिर दिल्ली जाकर रहने लगा, तो सबकुछ समझने लगा है। देश की राजनीति और गाँव–समाज में आये बदलाव को थोड़ा बहुत वह भी समझता है! सही बात तो यह है कि जान कर भी अंजान बना रहता है।

परसों ही की तो बात है। शहर के ही एक मुहल्ले में अफसरों के बच्चों को नाव से खेलते हुए देखा है। उधर एक तालाब में बच्चों के खेलने के लिए सरकारी नाव लगी है। इधर लोगों की जान खतरे में है। कोई खाते–खाते मरे और कोई खाये बिना।

''वाह री व्यवस्था'' .... अचानक उसके मुँह से निकल गया, ''ऊपर से नीचे तक....दिल्ली से गाँव तक।''
''इस साल कुछ चना–चुड़ा भी तो नहीं मिला!'' तेतरी ने कहा।

''यहाँ कहाँ मिलेगा....? पहले प्राण तो बचाओ, यहाँ से निकलकर सूखा में चलो,'' रतन ने कहा 'मगर कोठी पर तो मिला होगा...''हो सकता है मिला हो''

''पर हमें तो पिछली बार भी बहुत थोड़ा मिला था''

कैसे नहीं मिलता थोड़ा? पिछले साल भी तो हमलोग सबसे अंत में गये थे कोठी पर''रतन बोला

''इस बार भी यही हुआ...शायद मिले भी या नहीं''.....

'' हो सकता है कि नहीं भी मिले... अगर लिस्ट बनकर चली गई हो।

''मगर सरकार से कोई कहता नहीं है जाकर?''

''कौन कहेगा और किससे कहेगा?''

''कौन कहेगा? लोग कहेंगे, गाँव के लोग कहेंगे; जो पहले यहाँ से गये हैं या फिर, जो लिस्ट बना रहा है'' रतन तेतरी की इस बात पर मुस्कुराया। सोचने लगा, कहती तो सही है, पड़ोसी तो सबकुछ जानते है! क्या सबको मालूम नहीं है मेरा नाम पता? लेकिन कोई नहीं बतायेगा कर्मचारी को? छोड़ दिया अकेली औरत को बाल बच्चे सहित गंगा में डूब मरने के लिए।

''यही तो समाज है'' .... कहकर उसने एक लम्बी सांस ली। मन खटास से भर गया। तेतरी सुबक पड़ी थी रतन को सामने देखकर। रोते–रोते बोली, ''अच्छा किया, सोनू के पापा, जो तुम समय पर आ गए। इस उफनती गंगा में मैं विलकुल अकेली, दो छोटे–छोटे बच्चे ...क्या करती.... कोई सहारा देनेवाला नहीं.... फिर अकेली औरत....''

रतन को लगा, तेतरी की आँखों से बहने वाले आंसू कुछ और भी कह रहे थे जो वह शब्दों में व्यक्त नहीं कर पा रही थी।

अचानक रतन को ध्यान आया, ''अरे अभी डिबिया भी नहीं ....?''

तेतरी उठी। एक पोटरी खोलकर माचिस की डिब्बी निकाला और जलाने लगी। पर यह क्या... लगातार तीन चार तीलियां लगा चुकी पर कोई जलने का नाम ही नहीं ले रही थी। बढ़िया से छूकर देखा... अरे यह तो कुछ गीली हो गई है। याद आया तीसरे पहर पानी का एक झोंका आया था। अच्छा था कि वर्षा रुक गई। लेकिन उतनी ही देर की वर्षा, ओढ़ना–बिछौना सहित सब कुछ गीला कर गई।

झुंझलाकर रतन ने कहा, ''छोड़ दो, छोड़ दो ...उस वक्त तो ख्याल रखा नहीं।''

तेतरी सबकुछ जानती थी। पुरानी पन्नी अब कितनी फट चुकी थी? उससे कुछ भी नहीं बचाया जा सकता। कम से कम आठ मीटर नई पन्नी हो, तो ओढ़ना–बिछौना सहित सारे सामान को भींगने से बचाया जा सकता है .... और आठ मीटर पन्नी के लिए तो सौ रुपये .! कहाँ से आते सौ रुपये ... चाहकर भी रतन को नहीं बताया भींगने का कारण।

लेकिन बताना तो पड़ेगा ही। टिल्लहा कोठी जाने पर वहाँ तो जरुरत होगी ही ...पर उस वक्त भी वह चुप ही रही।

''और खाना ...''रतन ने पूछा

''भूख लगी है क्या ....''

''अरे, बच्चे क्या भूखे रहेंगे?'' रतन ने थोड़ा झुंझलाकर पूछा।

''बच्चों को तो चूड़ा खिला दिया है। अब सो जायेंगे।'' वह बोली।''लो, निकाल देती हूँ चूड़ा और थोड़ा गुड़ भी है, खा लो!''
थोड़ा चूड़ा–गुड़ फॉककर दोनों लेट गये। पर नींद थी कहाँ... अभी समय भी नहीं हुआ था सोने का।

तीसरे पहर दोनों ज्यादा चिंतित हो गये थे। टीले पर कोई बोल रहा था, पानी फिर तेजी से बढ़ेगा। ऊपर यू0पी0 में काफी वर्षा हो रही है।

वह सोच रहा था कि भगवान ने कम से कम इतनी राहत तो दी है कि वर्षा नहीं हो रही है। वह बोला, ''सोनू की माँ! यह तो ऊपर वाले की कृपा है कि वर्षा नहीं हो रही है तीन चार दिनों से....'' '' हाँ, ठीक कहते हो। अगर वर्षा होती तो खुले आसमान के नीचे हमलोग कैसे रहते... और हमारे ये दो छोटे–छोटे बच्चे .... एक टूटे छाते से क्या–क्या बचाते!''

''भगवान ने हमलोगों को जन्म ही क्यों दिया... गरीबों की भी कोई जिंदगी है? हम से अच्छे ये जानवर है। इनका मालिक काम लेकर दोनों शाम दाना –पानी तो देता है... या फिर इधर–उधर चरकर पेट भर लेते है! हमारी तरह इनको दूसरी जरुरत तो नहीं...'' तेतरी की बात ने रतन को कुछ और गंभीर बना दिया। वह सोचने लगा, कह तो ठीक ही रही है। पर अगले ही क्षण उसने स्वयं को हल्का कर लिया। वह बोला, ''कहती तो ठीक हो, पर सुनता कौन है? हल क्या है इसका..... गरीबी हटेगी कैसे....?''

''क्यों... सरकार क्या कर रही है? सरकार गरीबों को नहीं देखेगी?''.....तेतरी ने कहा।

''सरकार.... सरकार... कौन है सरकार! कहाँ है सरकार... ?''

''कौन है सरकार...? सरकार औफिसर है, सरकार कलक्टर है, हाकिम है सरकार... और कौन?''

''कहीं कुछ नहीं है, तेतरी... कहीं कुछ नहीं है। ये कलक्टर, कमश्निर, हाकिम... गरीबों के लिए कोई नहीं है, कहीं नहीं है... सभी बड़े बड़े साधन–सम्पन्न लोगों के लिए है! सभी अमीरों के लिए हैं।''

''सरकार रहती तो तुम इसी छत पर धूप और वर्षा में मरती.. .अपने बाल–बच्चों के साथ...?''

''ठीक कहते हो...'' कहते कहते उसे कुछ बहुत जरुरी बात याद आ गई...'' अच्छा... आखिर क्या कहा जुगल ने....?''

''क्या कहेगा... देखेंगे ...''

''देखेंगे... कल भी नहीं टपायेगा हमलोगों को ? ''

''ये जुगला... बड़ा हरामखोर है... सचमुच हरामखोर है...''

''सोनू के पापा... वह अपना खुनस निकाल रहा है। मगर देखना, बच्चू को कल मैं क्या सबक सिखाती हूँ। कल हमलोग टपेंगे और पहली खेप में ही।''

उस धुप्प अँधेरे में भी तेतरी के चेहरे पर आये क्रोध को रतन ने पढ़ लिया। एक सांस में उसने जुगल को न जाने कितनी गालियां पढ़ दीं।.. यही चर्चा करते करते वे दोनों पता नही कब सो गए।

सुबह तड़के रतन की नींद खुली, तो देखा तेतरी सभी सामानों को बाँध रही थी! सामान ही क्या थे– तीन–चार छोटी–छोटी पोटरी, एक उठौवा चुल्हा, दो थाली, दो–तीन कटोरे, भात पकाने की हांडी, चकला–बेलना, ओढ़ना और बिछौना। रतन ने भी उठकर सामान बाँधने में सहयोग किया।

धीरे–धीरे वे सामान को लेकर सूखे टीले पर रख रहे थे। सूर्योदय के साथ ही शहर की ओर से चार–पाँच लोगों को लेकर नाव इस घाट पर लगी। यात्री उतर रहे थे तब तक रतन ने कहाँ, ''जुगल इस खेप में हमलोगों को टपा दो''

''नहीं नहीं, अभी भूसा जायेगा'' जुगल ने जवाब दिया।

''भूसा... किसका भूसा जायेगा ?'' तेतरी ने पूछा।

''गणेशी चौधरी का'' जुगल ने उत्तर दिया।

''फिर हमलोग?

''आज दिन भर भूसा ढोयेंगे...''

''तो क्या हमलोग इसी पार मरेंगे ..?'' रतन और तेतरी ने कहा।

''तुमलोगों को कल...''

'चुप रह... हमलोग आज टपेंगे और अभी जायेंगे...। आदमी मरे और भूसा....'' कहकर तेतरी अपनी पोटरी नाव पर रखने लगी।

''खबरदार...'' जुगल जोर से चिल्लाया।

''चुप! खबरदार का बच्चा...''

''अपना खुनस निकालता है रे... मुझे समझ क्या रखा ऐसी वैसी औरत... भूल गया क्या मेरा चाँटा... उस दिन का, हरामजादे...'' कहकर पिल पड़ी तेतरी उस पर भूखी बाघिन की तरह।

रतन, जो अब तक खड़ा–खड़ा दोनों का संवाद सुन रहा था, खुद भी भिड़ गया। तीनों गुत्थमगुथ्था हो रहे थे! जुगल सम्भाल नहीं सका स्वयं को। नाव के अगले भाग पर वह औंधे मुँह गिरा था। नाक और मुँह से बलबल खून गिरने लगा।

इधर तेतरी लात और धूसे अनवरत उस पर चलाये जा रही थी।

जितनी तेजी से उसके हाथ चल रहे थे, उतनी ही तेज गति से शब्द भी निकल रहे थे।

''स्साला... आया था मेरे पास... अकेली जानकर... हरामजादा... तुमने समझा क्या था मुझे दो पैसे की औरत... एक ही चॉटे से भाग खड़ा हुआ था और वही बदला...'' तेतरी साक्षात् दुर्गा बन गई थी।

नाव से उतरे तीन चार ग्रामीण हक्का–बक्का होकर तमाशा देख रहे थे। जुगल की चिल्लाहट सुनकर सभी दौड़े। मुश्किल से तेतरी के पंजे से उसे छुड़ाया और सूखे टीले पर लिटाया।

तेतरी ने जोर से थूका उस पर। फिर घूमकर अपना सामान उठाकर नाव पर रखने लगी। रतन भी तेजी से सामान लाद रहा था। दोनों बच्चों को नाव पर बैठाया और उठा लिया चप्पू।

एक चप्पू रतन के हाथ में और दूसरा तेतरी के हाथ में।

इस अप्रत्याशित घटना क्रम में रतन को भी थोड़ी चोट आयी थी! लेकिन सबकुछ भूलकर क्रोध और विस्मय के बीच उसे पत्नी पर गर्व हो रहा था।

उसके मुँह से अनायास निकला 'पहली खेप' और वह मुस्कुरा उठा।

कविता

बाल गीत

कृपाशंकर शर्मा 'अचूक'
38ए, विजय नगर, जयपुर–6
मो0 : 09983811506

सरिता जैसा बहना सीखो
सोच समझ कर कहना सीखो
आएगी जब कोई विपदा
नहीं रहेगी सदा आपदा
विपदा में सम रहना सीखो
सोच समझ कर कहना सीखो
रोड़ा पत्थर बजरी–माटी
आएं पर्वत या हो घाटी
इनसे बसं सहना सीखो
सोच समझ कर कहना सीखो
होंगे सूरज चाँद सितारे
आसमान में चमकें सारे
इनसे दीक्षा गहना सीखो
सोच समझ कर कहना सीखो
अच्छी बात 'अचूक' सुहाती
सांस सांस सौरभ बरसाती
मीठा मधुर महकना सीखो
सोच समझ कर कहना सीखो

2.
गीत
भेद भाव तजि समता सरिता में स्नान करें
आओ भारत माता का मिलकर सम्मान करें
अपने भीतर की कमियों का
बोधन करना है
अपकारों से अपकारित
सम्बोधन करना है
उपकारों से सब पुरस्कृत हों मन से ध्यान करें
आओ भारत माता का मिलकर सम्मान करें
दृढ़ता का नित भाव रहे
क्षमता बढ़ती जाये
सम दृष्टी सदवृत्ति की
मस्ती चढ़ती जाये
कर्म सुवासित से जग सारे का अनुपान करें
आओ भारत माता का मिलकर सम्मान करें
दो दिन जीना है फिर मरना
ब्रह्म अटल जैसा
सौ दिन से सम तुल्य लगे हैं
सुन्दर पल कैसा?
समय 'अचूक' मिला इसका आदान प्रदान करें
आओ भारत माता का मिलकर सम्मान करें।

विक्रम साराभाई

भारत को अंतरिक्ष की उँचाइयों तक पहुँचाने वाले महान अंतरिक्ष की उँचाइयों तक पहुँचाने वाले महान अंतरिक्ष वैज्ञानिक डॉ. विक्रम साराभाई ने विज्ञान के क्षेत्र में अपने राष्ट्र की अमूल्य सेवा की है. उन्होंने अहमदाबाद में भौतिक शास्त्रीय शोध प्रयोगशाला स्थापित की.। वे सदा अंतरिक्ष संबंधी खोजों में व्यस्त रहे तथा यांत्रिक चिकित्सा एवं अंतरिक्ष विज्ञान में भारत को आत्मनिर्भर बनाने में अमूल्य सहयोग दिया.। उनके प्रयासों के फलस्वरूप ही भारत अपना पहला उपग्रह 'आर्यभट्ट' अंतरिक्ष में भेजने में सफल हो सका था।उनकी स्मृति में बना विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केन्द्र आज भी उनकी यशगाथा सुना रहा है।

वो तिलचट्टे

आशा पाण्डेय ओझा
पिंडवाड़ा, राजस्थान
मो0 : 07597199995

मैं उसे जानती नहीं
उससे मुहब्बत भी नहीं करती
न ही पसंद भी
नापसंद भी नहीं करती
नापसंद उसे किया जाता है
जो कभी पसंद आया हो
जिससे कभी कोई
वास्ता ही ना रहा
ना तन का, ना मन का
ना जीवन का
किसी बस स्टॉप, रेल्वे स्टेशन,
बाजार, राह चलते शहर,
ऑफिस या कॉलेज
नरेगा हो या फेमिन
बार–बार उसकी आँखें
अंधेरे में, गर्म स्थान खोजती हुई
तिलचट्टों सी रेंगती जब मुझ पर
या जानबूझकर बेवजह
छूने का करती यत्न
भोजन ढूंढती फिरती तिलचट्टे के
एक जोड़ी संवेदी श्रृंगिकाएँ सी
वासना के कीच से लिपटी
उसकी गंदी उँगलियाँ मुझे
तब मैं खूबसूरत नहीं लगती खुद को
बल्कि लगता है
गंदी चिकनाई सी कुछ काइयां
उतर आई हों जैसे
मेरे जिस्म के चारो ओर
या कहीं से कुछ उघड़ा छुट गया
मेरे बदन का बर्तन
यही सोचकर
बचा–बचा कर सबसे नजरें
जांचती हूँ अपने अंगों को कई–कई बार
सब कुछ ठीक होने की
तसल्ली के बावजूद
लगता है कुछ गड्ढे से हो आये हों
ज्यों मेरी देह पर
उसकी घिनौनी पैनी नजर से
और तब अचानक
मेरे बदसूरत हो जाने का अहसास
होने लगता मुझे
बड़ी सिद्दत से
मेरा रुप–रंग लगने लगता
बैरी मुझे
मिचलाने लगता मन
जी करता है
अपने पैरों तले कुचल दूँ
उसकी उँगलियों के श्वासरंध्र
जो छु कर देह
छिलती है मेरी आत्मा
और तब
जाने कहाँ गुम हो जाते हैं
यकायक
मेरे अंदर के नारी वाले कोमल भाव
तुम अक्सर जिसे कहा करते हो
चंडी, दुर्गा या कि
चाहे फूलन ही सही
हाँ, वैसा ही कुछ–कुछ
होने लगता है आभास
टूट कर मेरी सहन शक्ति
देने लगती जवाब
हाँ, तब मैं पीटती हूँ उसे
फिर जानवरों की तरह
खो कर अपना आपा
कभी–कभी बीच बाजार
तय किया है मैंने
अब मैं नहीं करुँगी
घबराकर आत्म–हत्या
नहीं बैठूंगी चुप
अब दूँगी पलट कर जवाब
सुनो तिलचट्टों!
जिस दिन छूओगे हमारी इज्ज़त
जोखिम में होगी तुम्हारी भी जान
विचार लेना तुम!

लघुकथा

आओ कहें, दिल की बात

क़ैस जौनपुरी
अंधेरी, मुम्बई, महाराष्ट्र
090047817

विरल!

मैं आपसे कुछ बोलना चाहती हूँ। ठीक है, मैं मानती हूँ कि कुछ गलतियां मेरी भी थीं कि मैं आप पर शक करती थी, और... परेशान भी करती थी, ठीक है.... वैसे गलती हो गई ना? लेकिन इसका ये मतलब थोड़े ना होता है कि तुम मुझे छोड के चले जाओ, मैं भी तो तुम्हारी बीवी थी? हाँ, मैंने भी तो तुम्हारी पहली बीवी को ऐक्सेप्ट किया था ना? मैं कभी कुछ बोली थी उनके बारे में? जबकि वो आपके साथ में रहती भी नहीं थी। हूँ? सात साल तक तुम, ये घर, मेरा घर, आपका घर था, है ना? मेरे बच्चे, तुम्हारे बच्चे थे। तो, अब ऐसा क्या हुआ तुम्हें? ठीक है, गलती किससे नहीं होती है। आपसे भी हुई हैं कितनी बार? इन छः – सात सालों में आपसे भी बहुत सारी गलतियां हुई थीं। मैंने भी तो माफ़ किया। इग्नोर किया था ना? कभी, ऐसा नहीं सोचा कि छोड़ दूं विरल को, हाँ हर चीज में मैंने तुम्हारा साथ दिया था।

फिर, अब? मैं भी तो एक साल से तुम्हारा वेट कर रही हूँ ना कि आप आ जाओ, लेकिन आप एक बार भी नहीं सोचते हो कि मैं कैसे जी रही हूँ? मैं अपने घर को, अपने बच्चों को, कैसे संभालती हूँ? नहीं सोचते हो तुम। हाँ? सिर्फ़ तुम ये समझ रहे हो कि नहीं, मेरा परिवार, मेरा घर अच्छा है, मेरा खानदान अच्छा है, इसके साथ मैं जी लूंगी, लेकिन ये जरूरी नहीं है कि इन्सान, घर, खानदान, या ज्यादा पैसा रहता है, उससे खुश रह लेता है। नहीं रहता। कुछ अपने आदमी की भी जरुरतें होती हैं ना औरत को? हाँ? हाँ? मुझे भी। मुझे हर तरीके से तुम्हारी जरुरत है विरल, और मैं ये सोचती हूँ कि तुम मुझे सिर्फ़ और सिर्फ़ एक बार माफ़ कर दो। एक बार मुझे एक मौका दे दो। मैं तुमसे मिलना भी चाहती हूँ। एक बार मिलना चाहती हूँ। अब मैं क्या करुँ ऐसा, जिससे मैं तुमसे मिल पाऊँ।

मैं तुम्हें ऑफ़िस में फ़ोन करती हूँ, बात नहीं करते हो, कट कर देते हो। तुम अपनी गीता को बताते हो, अपनी पत्नी को, तो ये गलत करते हो ना? क्यूं? थोड़ा सा, अगर तुम ये सोचो कि इसने भी मेरे लिए कुछ किया है। क्या मैंने तुम्हारे लिये कुछ नहीं किया, किया ना? जो तुम्हारी वो औरत है, उससे ज्यादा मैंने आपके लिए किया है ना? वो तो आपके साथ रहती भी नहीं थी। हाँ? मैंने ऐसा तो नहीं कहा था कि आपके साथ शादी करने के बाद ही वो सब। यह भी नहीं कहा था कि अपने घर ले चलो मुझे। मैं खुद अपने घर में रहती थी ना? जो मेरा घर है। मैं आपके साथ वहीं खुश थी ना? लेकिन वो आपके साथ कभी रही नहीं थी। आप खुद उसके साथ इतनी दूर जाके रह रहे हो।

अब तो तुम सिर्फ़ यही बोलते हो ना जब तक मैं तुम्हें अच्छी लगी थी तब तक तुम मेरे पास थे। तभी तक मैं तुम्हारी बीवी थी, घर आपका था, लेकिन अब कुछ भी नहीं है आपका... तो ऐसा आपको नहीं करना चाहिए ना? एक बार, एक बार सोचो ना आप, प्लीज़ एक बार, अपने ठण्डे दिमाग से सोचो कि मैंने भी आपके लिए काफ़ी कुछ खोया है। यार, मैंने अपना घर–परिवार छोड़ दिया था , सबकुछ छोड़के आपके साथ आई थी मैं! फिर आप, एक बात क्यूं नहीं समझ रहे विरल? मैं आपसे प्यार करती हूँ... बहुत प्यार करती हूँ।

एक साल हो गए हैं हमारे झगड़े को, हमको अलग हुए, लेकिन एक साल में ऐसा एक दिन नहीं गया कि मैंने आपको कभी फ़ोन नहीं किया हो। आपको चेक नहीं करती हूँ मैं कि आप कब घर पहुँचे हो? आप विगड़ जाते हो। मैं हमेशा चेक करती हू। आप घर पहुँच गए हो। आप कहाँ हो? आप ऑफ़िस गए हो कि नहीं? आपके ऑफ़िस के लोगों से बात करती हूँ कि विरल ने खाना खाया? ये किया? क्यूं? कौन करेगा ये? ये कोई, ऐसे कोई तो नहीं करेगा, जो प्यार करेगा, जो तुम्हारी बीवी होगी, वही करेगी ना? एक बार अगर तुम थोड़ा सा भी सोचो मेरे बारे में, तो शायद मुझे खुशी मिल जाए।

अब, मैंने भी आपके पीछे अपनी ज़िन्दगी खराब की। यह तुम जानते हो, मैंने कैसे–कैसे अपनी ज़िन्दगी खराब की है। हॉ? तुम्हारी हर चीजों को अपने गले लगाया था। तुम भी लगाते थे, लेकिन एक शक नें... और शक भी वही करता है जो ज्यादा प्यार करता है। इसलिए मैंने भी तुमपे इतना शक कर लिया था। गलती हो गई मुझसे। अब क्या? उस गलती को तुम माफ़ कर दो, उसके लायक भी नहीं हूँ क्या मैं? मैं क्या थी, क्या हो गई हूँ, तुम्हारे चक्कर में। फिर भी हमेशा तुम्हारा इन्तजार करती रहती हूँ कि कब विरल आ जाए?... कि कब विरल घर का दरवाजा खटखटाएगा?

–तुम्हारी बबीता

कविता

अच्छा लगता है

सच्चिदा नंद 'इंसान'
मुन्दीचक, भागलपुर

घर का आंगन
उसका साया
उसका सुख–दुख अच्छा लगता है।
बच्चों की किलकारी
उनके नोक–झोंक
शोर मचाना अच्छा लगता है।

तपता सूरज
तपती धरती श्रम के तन पर
स्वेद बूंद की गुत्थम्–गुत्थी।
बेसुध–उलझा तन–मन उनका
अच्छा लगता है।

उमड़–घुमड़, आह्लाद में डूबे
नभ में गरजते
काले बादल
रिम–झिम, रिम–झिम वर्षा बूंदें
भीगी वादी
हरियाली की चादर ओढ़े
चमन का आंगन
अच्छा लगता है।

दिन भर श्रम से
लड़कर उसका
शाम लिए मुस्कान होंठ पर
श्रम से अर्जित
बंद मुट्ठी में
वाजिब सिक्के
आटा–दाल
थोड़ी सब्जी
बच्चों खातिर
मीठे और नमकीन बिस्किटें
थके कदमों से
खोली लौटना
बच्चे–पत्नी
प्यार उड़ेलते
द्वार पे उसका नयन बिछाये
अच्छा लगता है।

फिर विहान का
बेफ़िक्री
काम की सौ–फीसद गारंटी
बिटिया का स्कूल जाना
पुस्तक–कॉपी
सभी मुफ्त में
सारी चिन्ता मुल्क का लेना
सड़कें अच्छी
आसान सुलभ
स्वास्थ्य की सेवा
पीपल के पेड़ों की छांव
डाल–डाल पर
चिड़ियों का बसेरा
उनका रह–रह, चह–चह करना
प्यार का नग्मा
उनका गाना
अच्छा लगता है।

विश्व इतिहास के महानतम व्यक्तियों में जूलियस सीजर का नाम अग्रगण्य है. रोमन सम्राट जूलियस सीजर का एक सुदर्शनन, बुद्धिमान तथा साहसी व्यक्ति था. शेक्सपियर ने अपने प्रसिद्ध काव्य–नाटक 'जूलियस सीजर' में इस महान सम्राट को साहित्य में भी अमर बना दिया। सीजर ने जब राजनीति में प्रवेश किया, तब रोम एक भूमध्यसागरीय साम्राज्य था, पर फ्रांस, बल्जियम और स्पेन के कुछ भाग जीतकर उस यूरोपीय साम्राज्य की नींव डाली, जिसे आज हम पश्चिमी यूरोप कहते हैं.

प्रार्थना

उमाकांत झा 'अंशुमाली'
विक्रमशीला कॉलोनी, तिलकामांझी
भागलपुर
मो0 : 09472464893

अपने चरण–कमल की माँ भक्ति मुझे दे दो
सम्पूर्ण समर्पण की माँ शक्ति मुझे दे दो
संसार ये माया है, कुछ भी नहीं है मेरा
यह ज्ञान तो तब आये आशीष हो जब तेरा
जल में रहूँ कमल सा ये प्रवृति मुझे दे दो

सुख पाने को भटकता है जीव ये जनम भर
पर दुःख की ठोकरें ही पाता है पग–पग पर
तेरे ध्यान रुपी सुख में आसक्ति मुझे दे दो

अनमोल मिला जीवन ये व्यर्थ न हो जाये
तन–मन का मेरा कण–कण परमार्थ में लग जाये
परहित में कटे पल–पल वो मस्ती मुझे दे दो

किसी अंधे की लाठी बनूं असहाय का सहारा
किसी डूबते को ला सकूं मंजधार से किनारा
भव सिंधू पार करने की कश्ति मुझे दे दो

भटका बहुत दुःख पाया अब, माँ मुझे बचा लो
अपने चरण की सेवा में माँ मुझे लगा लो
जगमग हो मेरा जीवन वह कान्ति मुझे दे दो

भक्ति का दो प्रकाश, ज्योति ज्ञान की जला दो
अपनी शरण में ले लो, तृष्णा सभी मिटा दो
अपने चरण के धूल की प्रशस्ति मुझे दे दो

कामी कुटिल हूँ मैं, पर तू तो कृपामयी है
मैं हूँ कपूत पर तू, माता दयामयी है
मेरे पाप–ताप हर माँ, चिर शान्ति मुझे दे दो
अपने चरण–कमल की माँ, भक्ति मुझे दे दो ।

कविता

केंचुवे और साँप

अखिलेश चन्द्र श्रीवास्तव
403ए, सन्फ्लावर, रहेजा कॉम्प्लेक्स
कल्याण,जिला–ठाणे
मो0 : 09321497415

कुछ लो केंचुवे को भी
साँप समझ
मार डालते हैं
और कुछ
साँप को भी
केंचुवा समझ
उससे खेलते रहते हैं
उनका मखौल उड़ाते हैं
बचपन में सभी
केंचवे और साँप
दीखते हैं एक सदृश
निरीह.... लावारिस
एक जगह
पड़े पड़े निर्जीव से
पर ज़रा सी
हरकत आहट से
केंचुवे हिलते हैं
आगे... पीछे
रेंगने की कोशिश करते
वहीं साँप
हिलते हैं दायें बायें
बिजली सी तेज़ी
बला सी रंगत के साथ
तुरंत साँप
और केंचुवे का भेद
समझ में आ जाता है
अतः ठीक से
पहचानने की जरूरत है
सांप और केंचुवे
भेद करने की जरूरत है
कहीं ऐसा न हो
कि आप जिसे
केंचुवा समझ कर
मनमानी कर रहे हैं ...
सता रहे हैं ...
वो साँप निकलें
आपको डँस ले और
आपके जीवन
खतरे में पड़ जाये
वहीं जिसे आप
साँप ... समझ के
पाल रहे हैं
दूध पिला रहे हैं
वो तथाकथित साँप
आपके काम के
समय निकले
निरा ... केंचुवा
और आपकी सारी आशाएं
धूल धूसरित कर दे

अतः साँप और केंचुवा
यद्यपि दीखते है
सदृश
उनकी सीरत
अलग अलग होती है
सूरतें एक सरीखी
होने से क्या होता है ... ?

साँप और केंचुवे
दोनों ही है संसार में
बिखरे ... फैले
पूरे वातावरण को घेरे
अतः आप अपनी
निगाह साफ रखो
पहिचान के बाद वापरो
धोखा मत खा जाना
और केंचुवे के धोखे में
साँप से मत भिड़ जाना
साँप से मत भिड़ जाना
साँप से मत भिड़ जाना

शब्द

सुरेन्द्र कुमार शर्मा
54ए, विजय नगर–1
करतारपुरा, जयपुर
मो0 : 9314445539

शब्द के टुकड़े मत करना
शब्द टूटकर बिखर गया तो
क्या होगा अपना
शब्द के टुकड़े मत करना

हमने ही शब्दों की कितनी
फसल उगाई है
शब्द हमारा अन्तर्मन यह
अपना भाई है
शब्द फिसलकर बिछुड़ गया तो
क्या होगा सपना
शब्द के टुकड़े मत करना

शब्द ब्रह्म है शब्द धर्म है
शब्दों में तरुणाई
ये जीवन का सच बतलाते
देकर अरुणाई
जनम–जनम का साथ गया तो
क्या होगा जपना
शब्द के टुकड़े मत करना

शब्दों ने है रची ऋचाएँ
शब्दों में ही साखी
अन्तिम क्षण तक साथ रहे ये
जब तक जीवन बाकी
अर्थ व्यर्थ ले सिहर गया तो
क्या होगा अपना
शब्द के टुकड़े मत करना

2

मत हो आज उदास
तेरा दिन आयेगा
जो खोया है आज
वो कल फिर पायेगा
सबने पाया प्यार यहाँ
और खोया है
सबका जीवन भार
सभी ने ढ़ोया है
सूरज नया सवेरा
कल फिर लायेगा
मत हो आज उदास
दुःख–सुख तो आनी जानी है
जीवन एक कहानी
जिसने इसका अर्थ है समझा
वो है सच्चा ज्ञानी
आशाओं के फूल खिलेंगे
भँवरा फिर मड़रायेगा
मत हो
आज उदास

3

यदि तुम एक पल को भी
मेरे गर साथ आ जाते
मेरी साँसों के गाये गीत
तेरे साथ में गाते

मेरी तुम कल्पना का रुप
बन साकार आई हो
मेरे सपनों की पांखों को
तुम्हीं सचमुच उड़ाई हो

तेरी अंगुली पकड़कर
शब्द भी सच साथ में आते
तेरे होठो को छुए अक्षरों के
साथ हो जाते
मधुर फिर कल्पना के लोक
तेरे साथ में गाते

मेरी धड़कन की तुम
बस एक पल आवाज हो जाते ।

कविता

मसूरी

रविशंकर सिंह
रानीगंज, वर्द्धमान
मो0 : 09434390419

शिशु की मानिन्द
सोया है
पहाड़ी शहर
तारे
आसमानी चादर ओढ़कर
घरों से झाँकती
लाल, पीली, नीली रोशनी
जैसे परियों के लिए
रखे हों
पहाड़ पर लालटेन
पर्वत की कोर काटकर
बनी ऊँची–नीची सड़कें
भागती गाड़ियों में
मुसाफिरों की
थम जाती हैं सांसें
गहरी खायी को देखकर
यहाँ ठंढ का एहसास
कितना गुलाबी लगता है
गाड़ियों के समानान्तर दौड़ लगाते
भूरे पहाड़ी बच्चे–बच्चियाँ,
हाथों में लिये
बुरांस के लाल फूलों का गुच्छा
खरीद लेने का इसरार करते हैं–
गले को तर करनेवाला मीठा
पौष्टिक शर्बत
बनता है इससे
पर्वत श्रेणियों पर
चीड़ और देवदार
दूध सी धवल
जल–धारायें
देखने
यहाँ आतें हैं सैलानी
वर्ष भर
विचरते हैं
आठो प्रहर
सीजन में यहाँ
दोगुनी हो जाती है
हर चीज की कीमत
टोपी, जूता
बास छोड़ती पोशाक गहनें
बताता है पीट्ठू...
सीजन का इंतजार रहता है हमें
उसी कमाई से
गुजर जाता है पूरा वर्ष
जीवट और खुशमिज़ाज लोग
किन्नर–किन्नरियों जैसी आभावाले
युवक–युवतियाँ
पहाड़ी मैना के गीत
झरनों का संगीत
मनभावन परिदृष्य
इस भूमि के वैभव हैं।
यहाँ हैं
आदिकवि वाल्मीकि का मंदिर
रहा होगा
यहाँ से उनका
कोई–न–कोई रिश्ता
शायद यहीं देखा होगा उन्होंने
मैथुनरत क्रौंच का बध
सुना होगा
घाटियों में गूंजता
विरहाकुल क्रौंच का एकाकी विलाप
विकल हो गई होंगी
ऋषि की आत्मा
फूट पड़ी होगी
पहली कविता की मंदाकिनी
रात्रि के सन्नाटे में
झींगुरों की शहनाई
नल से टपकते
पानी की बूंदों की टप–टप
बहुत साफ सुनाई देती है यहाँ
हवा के हिंडोलें पर हिलती
चीड़ की टहनियाँ–
अभिनंदन करती है
आगन्तुकों का
विदाई के वक्त
अपनी झालरनुमा
बारीक ऊँगलियाँ
हिलाकर कहती है कि
आना मसूरी...

कविता और कवि

सुशील कुमार श्रीवास्तव
शास्त्रीनगर अररिया–854311
मो0 : 9431412508

गीत गा न सका, गुनगुना न सका
तार दिल के झकोरे गये थे मेरे
ताल–सुर और लय भी मिला न सका
ग़म व शिकवे मरोड़े गये थे मेरे ।

मैंने चाहा तुझे तो गुनाही मेरी
तूने कर दी मुक़र्रर ये महफ़िल लगा
किन्तु सोचा नहीं अब तलक तूने ही
कैसी फरमाई थी वो बला–सी अता।

मैंने माना कि जिद्दी हूँ, पर मैंकदा
मैं गया, तो गया था तुम्हारे लिए
तू न मानो मगर मैं मुसाफ़िर हुआ
मैकदा का तो केबल तुम्हारे लिए।

तेरे दामन थे फैले वहाँ इस क़दर
थाम लेने की जुर्रत था मैं कर गया
तेरे आग़ोश में था मिला जो सुकूँ
शेर व शायरी की हिम्मत फ़क़त कर गया।

कुछ भी लिक्खूँ, पढूँ या सुनूँ या गुनूँ
सब जगह तेरी रहमत तलाशी गई
सारे गिले–शिकवे–या कि मन के भरम
भावनायें वहीं पर तराशी गई।

ली कमल ने जो सुध, बेसुध हो चली
तेरी महफ़िल में छिटकी छटा मतलबी
मिल गई तू तो हमने था संग–संग कहा
नाम कविता मेरा, नाम मेरा कवि।

अब तो कविता ही कवि की है पहचान बनी
मस्त–पागल हो कवि वो भटकता रहा
शमा बन के कविता भी जलती रही
मोम बनकर कवि भी पिघलता रहा ।

लघुकथा

फ़रिश्ता

विजय कुमार सप्पति
सिकेन्दराबाद, तेलङ्गाना
मो0 : 09849746500

बहुत साल पहले की ये बात है। मुझे किसी काम से मुंबई से सूरत जाना था। मैं मुंबई सेंट्रल स्टेशन पर ट्रेन का इन्तजार कर रहा था। सुबह के करीब 6 बजे थे। मैं स्टेशन में मौजूद बुक्स शॉप के खुलने का इन्तजार कर रहा था, ताकि सफ़र के लिए कुछ किताबें और पेपर खरीद लूं।

अचानक एक छोटा का बच्चा जो करीब 10 साल का होगा; अपनी बहन जो कि करीब 7 साल की होगी; के साथ मेरे पास आया और मुझसे कुछ पैसे मांगे।

मैंने उनकी ओर गहरी नज़र से देखा और कहा, '' मैं भीख नहीं दूँगा। हाँ, अगर तुम मेरा सूटकेश उठाकर मेरे कोच तक ले जा सको तो, मैं तुम्हे 10 रुपये दूंगा।'' वह लड़का मेरा सूटकेश उठाकर ट्रेन के मेरे स्लीपर कोच तक ले आया।

मैंने उसे 10 रुपये दिए। दोनों बच्चे बहुत खुश हो गए और जब वो जाने लगे तो मैंने उससे पूछा, ''तुम भीख क्यों मागते हो, जबकि तुम दोनों कोई काम कर सकते हो।'' लड़के ने बड़े उदास स्वर में कहा, ''साहेब, यहाँ कोई हमें काम नहीं देता है। क्या करें, हम दोनों को कोई नहीं है।''

मैंने कुछ देर सोचा और उससे कहा, ''तुम स्टेशन पर जूते पॉलिश करने का काम शुरु कर सकते हो।''

उसने कहा, ''साहेब ये तो मैं कर सकता हूँ, पर मेरे पास सामान खरीदने के लिए पैसे नहीं है।''

मैंने उससे पूछा, ''कितने पैसे लगेंगे?''

उसने कहा, 'मुझे कुछ पक्का मालूम नहीं साहेब।'

मैंने उसे 300 रुपये दिए और उससे कहा कि इससे सामान खरीद लो और अपना काम शुरु करो। किसी से मांगने की जरुरत नहीं पड़ेगी और हो सके तो इस बच्ची को सरकारी स्कूल में भेजो।

उन दोनों ने मुझे हाथ जोड़ कर प्रणाम किया। मेरी आँखे भींग गयी थीं। दोनों बच्चे भी करीब–करीब रो ही रहे थे।

ट्रेन चल पड़ी और साथ ही वो दोनों भी उस स्टेशन पर यादों के रूप में छूट गए।

समय बीतता गया। कई साल गुजर गए।

उस घटना के कुछेक बरस के बाद फिर किसी काम से मेरा सूरत जाना हुआ। मैं फिर उसी मुंबई सेंट्रल स्टेशन पर खड़ा था। अचानक ही वो बच्चो वाली घटना याद आ गयी, उस बात को करीब 5 साल गुजर चुके थे, पता नहीं वो दोनों कहाँ होंगे। मैंने मन ही मन कहा, 'खुदा उनको सलामत रखें।'

इतने में एक युवक मेरे पास आया और जमीन पर बैठ कर मेरे जूते को पॉलिश करने लगा। मैं सकपका गया मैंने कहा, 'अरे, अरे ये क्या कर रहे हो, मुझे जूते पॉलिश नहीं कराने है। मेरे जूते ठीक है।'

उसने कहा, 'सर, आप जूते पॉलिश करा लो। मैं अच्छे से पॉलिश कर दूंगा और क्रीम भी लगाकर चमका दूंगा'

पता नहीं उसकी बातो में क्या था, मैंने उसे जूते दे दिए, उसने बड़ी मेहनत से पॉलिश कर दिया और उसे एक कपड़े से चमकाने लगा। उसी वक़्त एक लड़की उसके पास भागती हुई आई और उस लड़के ने उसके कान में कुछ कहा। लड़की ने मुझे देखा और अपना दुप्पटा उस लड़के को दे दिया। उस लड़के ने उस दुप्पटे से मेरा जूता चमका दिया। ये देखकर मुझे कुछ अजीब सा लग रहा था।

जब जूते पॉलिश हो गए तो उसने उन्हें मेरे पैरों में डाले और फीते बाँध दिए। मैंने कुछ सोचते हुए अपने जेब से 20 रुपये का नोट निकाला और उस युवक को दिया।

वह लड़का उठकर खड़ा हुआ और कहने लगा, 'सर, आप से कभी पैसे नहीं लूँगा। आपको कुछ याद है, पाँच साल पहले आपने मुझे 300 रुपये दिए थे और कहा था कि भीख मत मांगो और कुछ काम करो।'

मुझे वो लड़का और उसकी बहन याद आ गये। अजीब इत्तेफ़ाक था, अभी कुछ देर पहले ही मैं उनके बारे में सोच रहा था। वे दोनों अब बड़े हो चुके थे और मुझे उन्हें इस तरह काम करते हुए देखकर अच्छा लगा।

उसने आगे कहा, 'मैं वही लड़का हूँ साहेब। आपके दिए रुपये से मैंने जूते पॉलिश करने का सामान ख़रीदा और काम शुरु किया और अब मैं खुदा की मेहरबानी से थोड़ा बहुत कमा लेता हूँ। मैं अब नाईट स्कूल में पढ़ता हूँ और मेरी बहन यहीं पास के सरकारी स्कूल में पढ़ने जाती है। यहीं एक छोटी सी खोली है, जहाँ हम रहते हैं।'

उस लड़की ने मेरे पैर छु लिए और कहा, 'साहेब, अल्लाह आपको सारे जहाँ की खुशी दे और आपकी रोज़ी में बरकत दें। खुदा करें कि आप जैसे इन्सान और हो जाएं तो इस दुनिया में कोई भीख नहीं मांगेगा और इज्जत से जियेगा।'

मेरा मन भर आया और मैंने उनसे उनका नाम पूछा, उन्होंने बताया – लड़के का नाम जमाल और उसकी बहन का नाम आयशा था। ट्रेन ने चलने की सीटी बजा दी थी, मैंने उन्हें खूब आशीर्वाद दिया।

मैं ट्रेन की ओर चलने लगा। लड़के ने मेरा सूटकेस फिर से उठा लिया और उसे मेरी कोच तक ले आया। मैं अन्दर जाने लगा। उन दोनों को देखा। उन दोनों ने मुझे हाथ जोड़ दिए। दोनों की आँखों में आंसू थे। लड़के ने पूछा 'साहेब आपका नाम क्या है।'

मैं कुछ बोलता, इसके पहले ही उसकी बहन ने जवाब दिया, 'अरे जमाल, इनका नाम फ़रिश्ता है।'

मेरी आँखें भीग गयीं और मेरा गला रुंध गया। ट्रेन चल पड़ी।

मैं उन्हें नहीं बता सका कि मेरा नाम क्या है या मैं कौन हूँ और मेरे लिए वो हिन्दू या मुस्लिम नहीं बल्कि इंसान हैं। मैं उन्हें नहीं बता सका कि मेरे बच्चे उन्हीं के उम्र के हैं और मुझे हर बच्चों में अपने बच्चे ही दिखायी देते हैं। मैंने उन्हें नहीं बता सका कि कभी न कभी, हर किसी को, कोई न कोई फ़रिश्ता जरूर मिलता है और मुझे भी कोई फ़रिश्ता कभी मिला था और इस फानी दुनिया की लाख बुराईयों के बीच में ये एक खुदाई अच्छाई मौजूद है, जिसके चलते कोई न कोई, कभी न कभी, किसी का भला जरूर करता है। मैं उन्हें नहीं बता सका कि उनकी इस मेहनत भरी ज़िन्दगी को देखकर मुझे उन पर बहुत फ़क्र है और मैं कितना खुश हूँ।

ट्रेन के दरवाजे पर खड़े होकर मैं बहुत दूर तक उन्हें देखते हुए हाथ हिलाते रहा।

लघुकथा

मिट्ठू

रीता वर्मा
एफ–पंचपुष्प अपार्टमेन्ट
अशोक नगर, इलाहाबाद (उ0 प्र0)

मेरे पड़ोस में एक प्यारी बच्ची रहती है, लय। उसकी उम्र सात साल की होगी। वह अपने माता–पिता से यह शिकायत करने लगी कि सभी बच्चे अपने भाई–बहन के साथ खेलते हैं, मैं किसके साथ खेलूँ? लय, सड़क पर जाते कुत्ता, गाय, बकरी, सबके लिए अपनी माँ से रोटी बनवाकर उन्हें खाने को देती और प्यार करती है।

एक दिन उसके पिता उसके लिए एक पिंजरे में तोता लेकर आए। उसे पाकर वह बेहद खुश हुई। अब वह इस नए साथी से खूब बातें करती; प्यार करती। मैं जब लय से मिली तो उसने नए साथी से मुझे मिलवाया। अभी तक मैं लय से मिलने जाती थी, अब नए दोस्त से भी मिलने जाने लगी। मैं उस तोते से रोज मिलती। अब मैं उसको देखती तो उसकी आँखों में एक आकर्षण दिखता। तोते के प्रति मेरा लगाव भी काफी हो गया था। अगर लय नहीं भी होती तब भी मैं उसके पास आती।

मैं तोते से रोज मिलती, पढ़ाती–'मिट्ठू सच बोलो–मिट्ठू सच बोलो'। प्रतिदिन के प्रयास से तोता बोलने लगा। कहते हैं, मिर्च खिलाने से तोते की आवाज खुलती है, तो उसे एक लाल मिर्च खिलाती और रोज पढ़ाती यह क्रम चलता रहा।

एक दिन जब मैं तोते को मिर्च खिला रही थी तभी लय की माँ बोली–'आप तो मेरे तोते की आदत खराब कर रही हैं।' तभी तोता बोला–'सच बोलो।' मैंने कहा, 'जरा सोचिए, आज के इस मशीनी युग में इंटरनेट, टी0वी0, मोबाईल पर अधिकांश क्षेत्र में झूठ बोलने की होड़ सी है। सभी झूठ बोल रहे हैं। ऐसे में आपका तोता सच बोलने को प्रेरित करेगा, इसमें गलत क्या है?'

दूसरे दिन जब मैं मिर्च लेकर गई, तो पिंजड़ा खाली था। मैं बहुत दुखी हुई। निराश मन से मिर्च लिए अपने घर के अन्दर आई, तभी तोते के बोलने की आवाज आई। मैं आंगन में निकली तो देखा, जज साहब के मकान की ऊपर मंजिल पर बैठ तोता बोल रहा है, ''सच बोलो–सच बोलो।''

घड़याली आँसू

2

रामानुज बाबू अस्पताल में भर्ती हैं।

यह खबर उड़ते–उड़ते उनके सभी भाईयों के शहर तक पहुंच गई। साफ जाहिर है कि रामानुज बाबू के घर से किसी ने सूचना नहीं दी थी। बेटे डॉक्टर, एक्सरे, दवाई और उनकी सुश्रुषा में लगे हुए थे। सबको एक ही चिन्ता थी कि आखिर इनको कौन सा रोग हुआ है। समस्त जाँच के बावजूद मर्ज का पता नहीं चल पा रहा था। खून की कमी का कारण डॉक्टरों की समझ में नहीं आ रहा था। हुआ ये कि इस बात का दोषी डॉक्टरों ने बवासीर को माना। ऑपरेशन कर दिया। रामानुज बाबू को इस मर्ज से कोई तकलीफ हुई हो, ऐसा उन्हें ज्ञात नहीं।

ऑपरेशन हो चुका है और अस्पताल में रहते हुए सात दिन गुजर चुके हैं। आठवें दिन सुबह रामानुज बाबू के भाई श्याम बाबू गाँव से आए। इन्हीं श्याम बाबू के जिम्मे गाँव की खेती, मकान और आम के बगीचों की देखभाल है। आते ही भाई के सामने वो आँसू गिराने लगे। 'अरे मुझे जैसे की पता चला कि मेरे पिता समान बड़े भईया अस्पताल में भर्ती हैं तो मैं एकदम से बदहवास सा हो गया। बस जैसे था वैसे ही गाड़ी पकड़ ली, भईया को देखे बिना नहीं रह सकता। वो तो भला हो मिनाक्षी का कि उसने कब मेरी जेब में दो सौ रुपया डाल दिए।'

बड़े भाई तो बड़े भाई ही हुए। उन्होंने अपने छोटे बेटे से कहा 'मनीष बेटा, चाचा को चाय नाश्ता कराओ, बेचारा कुछ खाया न होगा। बाहर कोई दुकान है'।

मनीष ने कहा 'मैं चाचा को लेकर घर जा रहा हूँ वहीं चाय नाश्ता करेंगे'।

दोपहर होते–होते रामानुज बाबू के सबसे छोटे भाई का आगमन हुआ, जो उनके बड़े बेटे से एक या दो साल ही बड़े होंगे। बनारस में डॉक्टर हैं। उनकी डॉक्टरी की पढ़ाई में बड़े भाई अपने सामर्थ्य से अधिक सहयोग किए। वरना...

तो छोटे चाचा आते ही भईया के पास बैठे आँखों में आँसू भर–भर कर बोले 'भईया आपको यह क्या हो गया? आप तो मेरे पिता समान हैं।' इस बीच सूचना न देने की शिकायत भी दर्ज करा दी। 'मैं तो आपके अस्पताल में भर्ती होने की खबर से सन्न रह गया। बस सबेरे की इंटरसिटी पकड़ के चल दिया। वो तो रास्ते में जेब में हाथ गया, तो कोई कागज सा मालूम हुआ। निकाल कर देखा तो 100–100 के दो नोट थे। न जाने कब आपकी बहू ने रख दिया था।'

एक–डेढ़ घंटा बीतने के बाद रामानुज बाबू ने पूछा–'इंटरसिटी से ही जाओगे न।' चाचा ने धीमी आवाज में कहा– 'हाँ भइया,।' कहते हुए कुर्सी से उठ, भइया के पैरों की तरफ अपना हाथ बढ़ाते हैं।

रामानुज बाबू अपने बड़े बेटे से कहते है– 'जाओ श्री नाथ को बाहर तक छोड़ आओ और मुंह दूसरी ओर घुमा लेते हैं।

लोकवाणी

श्रीयुत सम्पादक
''संभाव्य'' हिन्दी त्रैमासिक
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर – 813210 (बिहार)

मनोरंजन सहाय सक्सेना
जयपुर
09460302770

प्रिय जायसवाल जी,

शुभकामनायें। मेरी जन्ततिथि 08–12–1944 है इसलिये प्रथम बार में ही इस संबोधन को अन्यथा न ले।

संभाव्य की मानद प्रति मिली, मैं आपके द्वारा प्रदत्त सम्मान के लिये हृदय से आभारी हूँ। किसी भी पत्रिका के अंक की Specimen Copy को मैं मानद प्रति ही मानता हूँ, क्योंकि इसमें प्रेषक का प्रेषित के प्रति एक सहज स्नेह, सम्मान का भाव निहित होता है, जो इसे Specimen Copy कहने पर प्रकट नहीं होता।

पत्रिका का सम्पादकीय बेहद महत्वपूर्ण होता है क्योंकि वह पत्रिका का मुख होता है, और सम्पूर्ण पत्रिका का दर्पण होता है, आपने बेहद कुशलता से इस दायित्व का निर्वहन करते सम्पादकीय लेख का प्रारम्भ कर्म ही जीवन है के संदेश को मुखरित करते हुए विश्वग्राम का दृश्य अंकित किया है और उत्तर विगत अर्ध सदी में हुये मानवीय जीवन मूल्यों के क्षरण के कारण समाज और राजनीति के पतन की ओर ध्यान आकर्षित किया है उपरान्त साहित्यकार का सामाजिक महत्व को प्रकट किया है वह गागर में सागर है, सम्पादकीय क्षमता का प्रतीक है। इसे बनाये रखें।

एकता की कड़ी राजभाषा हिन्दी में विद्वान लेखक ने राष्ट्र भाषा हिन्दी की महत्ता और उनका राष्ट्र भाषा के प्रति प्रेम का दर्पण है मगर अगाध स्नेह के भावावेग में लिखा है, जिससे भाषा और लिपि का अन्तर के साथ अनेक साहित्यिक ऐतिहासिक तथ्यों की विपरीत अवस्था सामने आती है। एक राष्ट्रीय समाचार पत्र के स्तम्भ लेखक तथा टिप्पणीकार श्री रमेश जोशी के अनुसार किसी भाषा विचार और ध्वनि को लिखने के लिये जिन चिन्हों का प्रयोग किया जाता है, उसकी क्रमबद्धता, सम्पूर्ण और सामूहिक व्यवस्था को लिपि कहते हैं, तथा वही लिपि सर्वश्रेष्ठ होती है जो अधिक से अधिक ध्वनियों को सही सही लिख सके।

अब भिन्न–भिन्न भौगोलिक स्थितियों के अनुसार हर बीस कोस (लगभग 40 किलो मीटर पर) भाषा बदलने का चलन इसी के अनुरुप है तो लिपि में भी वैभिन्यता है इसलिये दक्षिण भारत की प्रमुख भाषाओं तमिल, तेलगू, कन्नड़, मलयालम भाषा और लिपि के एक दूसरे से काफी विभिन्नता है यही नहीं गुजराती और मराठी भाषा और लिपि की भी यही स्थिति है।

अतिभावातिरेक में विद्वान लेखक ने कबीर, सूरदास, जायसी, तुलसीदास आदि कवियों द्वारा अपने विचार हिन्दी भाषा के द्वारा व्यक्त करने की बात कही है जबकि जायसी के लोकप्रिय काव्य– ''पद्मावत'' ही नहीं ''अखरावट,'''' आखिरी कलाम'' तथा ''चित्रावत'' सभी अवधी भाषा में है और इसके बारे में 50 के दशक में राजस्थान विश्वविद्यालय के स्नातक स्तर पर पाठयक्रम में मनोनित ''संक्षिप्त जायसी'' की भूमिका में विद्वान सम्पादक ने लिखा है– जायसी ने अपनी रचनाऐं ग्रामीण अवधी भाषा का आधार बनाकर जायसी ने ही पहले पहल उस भाषा के सामर्थ्य को प्रकट किया। बाद में गोस्वामी तुलसीदास ने उसे साहित्यिक एवम् परिमार्जित कर दिया। सूरदास अष्ट छाप परम्परा के संत कवि थे, उनकी भाषा बृज भाषा है और कबीर की भाषा तो सधुक्कड़ी है। हां प्रकाशन की भाषा देवनागरी लिपि है। मेरे विचार में लेखक को इन महान कवियों का प्रसंग देवनागरी लिपि की महत्ता प्रकट करने में करना चाहिये था, जो अधिक समीचीन होता है। विद्वान लेखक का राष्ट्र भाषा के प्रति अगाध स्नेह के भावातिरेक में भाषा के रुप में सारे विश्व को एकता के सूत्र में बांधने की बात उटोपियन विचार है, जो हमारी सरकारो द्वारा भ्रष्टाचार उन्मूलन और विदेशों में जमा काला धन की वापसी जैसा लगता है, राष्ट्र भाषा के प्रति प्रेम अच्छी बात है किन्तु ''अति सर्वत्र वर्जयते'' को विस्मृत नहीं करना शुभ होगा।

उसे लिखना ही था, कहानी का कथानक सुगठित नहीं है कथा बार–बार लेखक के हाथ से फिसलती है संभवतया वह एक मनोवैज्ञानिक देना चाहते थे मगर कथानक पर उनकी पकड़ नहीं रही है, वाक्य विन्यास में ''धीरे धीरे एक आध महीनें और पास हो चुके थे, भाषा पर उनकी पकड़ नहीं होने की ओर इंगित है।

श्रीमती नीरजा हेमेन्द्र की कहानी नारी विमर्श को लेकर है मगर एक संदेश देती है और समाज में सामान्य रुप प्रतिष्ठित शिक्षित परिवारों द्वारा हमें कुछ नहीं सिर्फ आपकी बिटिया चाहिये कहकर पुत्र के लिये अभाव ग्रस्त परिवार की कन्या को स्वीकार कर लेने के बाद छिपे सत्य को प्रदर्शित करती है और कहानी के शीर्षक को सार्थक करती है।

काव्य प्रकोष्ठ में– डा. मनाजिर आशिफ की गजल नजीर अकवरावादी की गजल गीत की परम्परा में अद्भुत प्रयास है, प्रभावित करती है।

श्री बृजेश नीरज की गजल के अशआर ''भीड़ है पर सब अकेले दिख रहे, भावनाओं में कमी होने लगी।'' और हम तरक्की की मशाल... प्रभावित करते हैं।

श्री अभिनव करुण अच्छा खासा प्रेम गीत लिखकर खिचड़ी भाषा में गजल लिखने की ओर क्यों उन्मुख हुये, उसे बेहतर बना सकते है।

डा. कमलेश की गजल के अशआरो में– ''गलती को गलती न माने

और श्री अशोक मिजाज की गजल के अश्आर– लहू तो कम है और न सुर समझते है...प्रभावित करते है।

लघु कथा– घड़ी की सूई में वर्तमान युवा पीढ़ी द्वारा अपने स्वार्थ की अपेक्षाओं के हित में परिवार के बुजुर्गों की अवहेलना प्रचलित कथा का चित्रण किया गया है। यह शुभ नहीं है क्योंकि आज का युवा जिस गलाकाट प्रतिस्प्रर्द्धा के युग में जी रहा है उसमें उसे हर पल अपने को साबित करने का संघर्ष है इसलिए वह हमारी अपेक्षाओं पर खरा नहीं उतर रहा। साठ के दशक में जी रहे वृद्ध और तीस के दशक में जी रहे युवा के बीच पीढ़ी का अन्तराल तो है ही, इस अन्तराल में जिन्दगी की गति इतनी तेज गति की हो गई है कि साठ के दशक के जीवन्त अपने को सब तरह से फिट मानने वाले भी इस दौड़ में तीस के दशक को जी रहे युवक के साथ कदम मिलाकर दौड़ ही नहीं सकते और यह दशा कुछ ही परिवारो में ही हो सकती है शत प्रतिशत में तो नहीं है, कुछ घटनाओं को लेकर सम्पूर्ण युवा वर्ग के प्रति दुराग्रह पूर्ण ग्रन्थि बना लेना शुभ नहीं है। बुराई का प्रचार प्रसार वैसे भी सद् कर्मों की तुलना में जल्दी होता है, अत: ऐसे लेखन को श्री प्रेमचन्द की आदर्शोन्मुख यथार्थ वाद की परम्परा का निर्वाह में प्रस्तुत किया जाय तो शुभ होगा।

बदलाव लघुकथा का मध्य शीर्षक को प्रभावित नहीं करता। वास्तव में लघु कथा साध्य और सुगठित कथानक के साथ कहानी के अन्य तत्वों के साथ लेखन बेहद श्रम साध्य है क्योंकि गागर में सागर भरना होता है इसमें। अभी हाल में एक पत्रिका में प्रकाशित एक लेखका की कथा इसे प्रमाणित करती है।

पति, पत्नी में सुबह से वह किसी बात को लेकर तीखी झड़प हो गई तो पति बिना नाश्ता किये और लंच बाक्स पर मेज पर रखा छोड़ ऑफिस चला गया। शाम को घर लौट कर उसने चाय नाश्ते को टाल दिया।

पत्नी ने शाम का खाना बनाकर थाली लगाई और पति के सामने रखकर बोली– ''नाराज मुझसे हो, खाने ने क्या बिगाड़ा है खाना खा लो, सुबह से भूखे हो।'' और तुमने जैसा खा ही लिया कहते हुये पति ने पत्नी की ओर देखा– पत्नी की आंखो में भरे आंसुओ को देखकर पति की आंख भर आई उसने रोटी तोड़ी सब्जी में डुबोया और पत्नी को बोला– पहले तुम खाओ, सुबह गलती मेरी थी।

''उत्कर्ष'' कहानी में लेखक अपने पुत्र के लिये माँ का विधवा होने के बाद– शरीर का सौदा करना, माँ के त्याग और बलिदान की भावना की महत्ता को रेखांकित नहीं लांछित करना प्रतीत होता है, विशेषकर कहानी के अन्त में उसका पुत्र की सिफारिश के लिये रेशमी साड़ी में सजना। मतलब माधुरी जानती है कि औरत के औरत होने का लाभ कैसे लिया जाता है। मिथिला भाषा के देवनागरी लिपि के वर्णन में क्रियाओं में लैंगिग दोष अखरता है।

डा. मंजरी पाण्डेय की क्षणिकायें प्रभावित करती है। पत्रिका बहु आयामी है सम्पादक की कुशलता से शीघ्र ही शीर्षस्थ पत्रिकाओं में स्थान प्राप्त करेगी।

सद्भावना सहित–

लोकवाणी

आदरणीय संस्थापक महोदय
'संभाव्य'

हार्दिक अभिवादन

आप के द्वारा प्रेषित सम्मान पत्र, अंगवस्त्र एवं जनवरी 15 के संभाव्य की दो प्रतियां प्राप्त हुई, हृदय से आभार, मैं और मेरा परिवार आप सबके स्नेह से अभिभूत है, अंक पहली नज़र में अधिक समृद्ध–परिपूर्ण है। विस्तृत समीक्षा अंक के गहन अध्ययन के उपरान्त प्रेषित करुँगा। 'संभाव्य' निश्चित ही साहित्य और पत्रकारिता के अपने उच्च आदर्शों पर चलते हुए वसुधैव कुटुम्बकम के अपने ध्येय में सफल होगा। हार्दिक साधुवाद! इस स्तुत्य प्रयास में हम सभी रचनाकार आपके साथ हैं।

पुनः आभार अभिवादन सहित।

अखिलेश चन्द्र श्रीवास्तव
09321497415

प्रिय जायसवालजी

सस्नेह

पत्रिका का जनवरी अंक मिला। बहुत–बहुत धन्यवाद। समूचा अंक ही बहुत आकर्षक एवं ज्ञानपूर्ण लगा। बधाई हो!
मैने भी कुछ रचनाएँ निकट अतीत में भेजीं थी। आपको कैसी लगी जानने की उत्सुकता है।

आपका

प्राप्त पुस्तकें

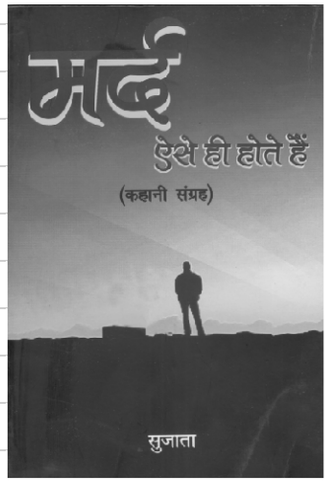
मर्द
ऐसे ही होते हैं
(कहानी संग्रह)
सुजाता

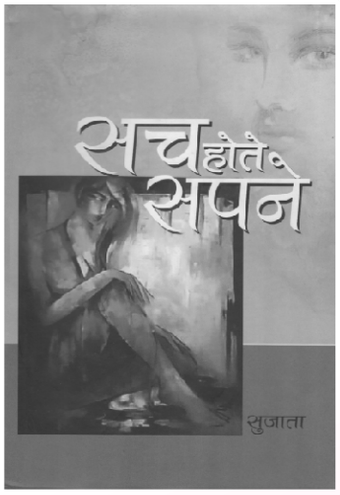
सच होते सपने
सुजाता

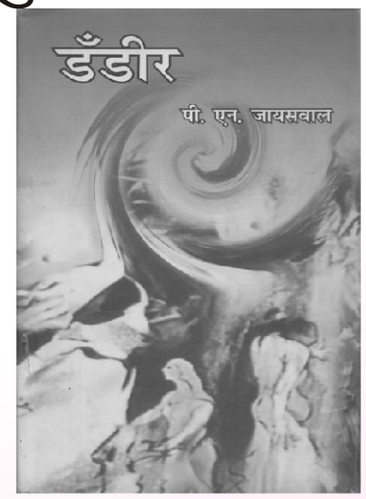
डँडीर
पी. एन. जायसवाल

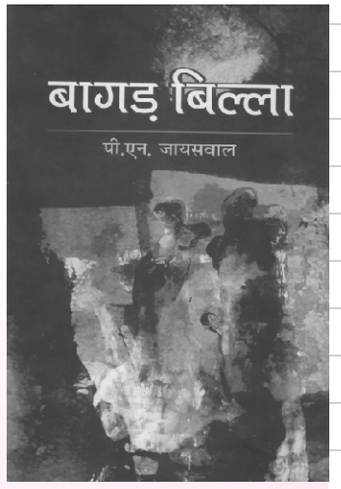
बागड़ बिल्ला
पी.एन. जायसवाल

अनुभूतियों
की
दस्तकें
डॉ. गिरिजा शंकर मोदी

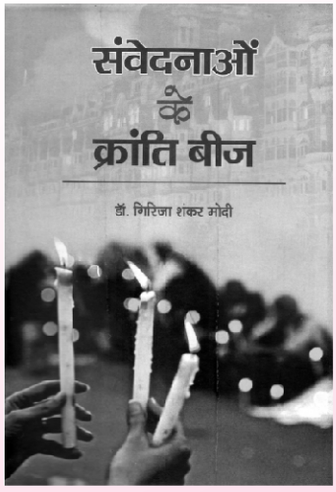
संवेदनाओं
के
क्रांति बीज
डॉ. गिरिजा शंकर मोदी

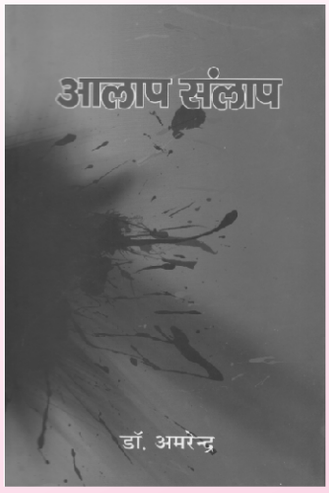
आलाप संलाप
डॉ. अमरेन्द्र

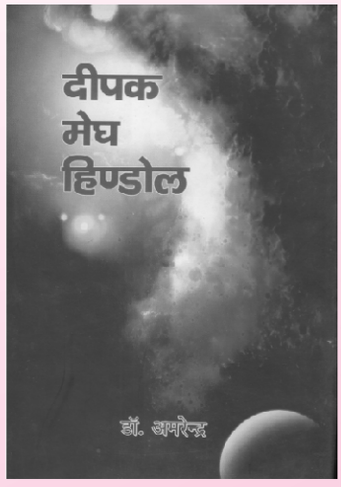
दीपक
मेघ
हिण्डोल
डॉ. अमरेन्द्र

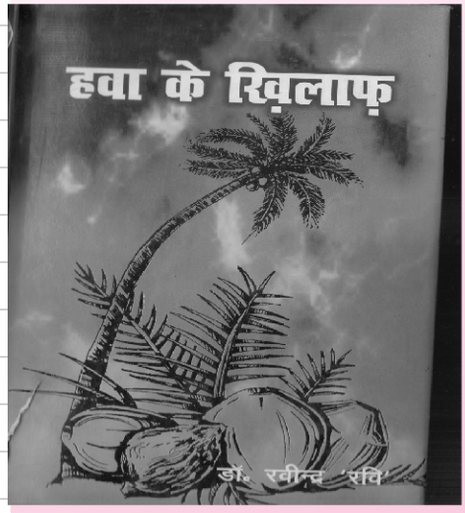
हवा के ख़िलाफ़
डॉ. रवीन्द्र 'रवि'

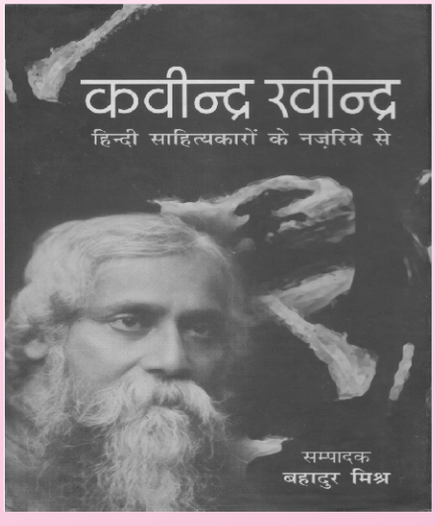
कवीन्द्र रवीन्द्र
हिन्दी साहित्यकारों के नज़रिये से
सम्पादक
बहादुर मिश्र

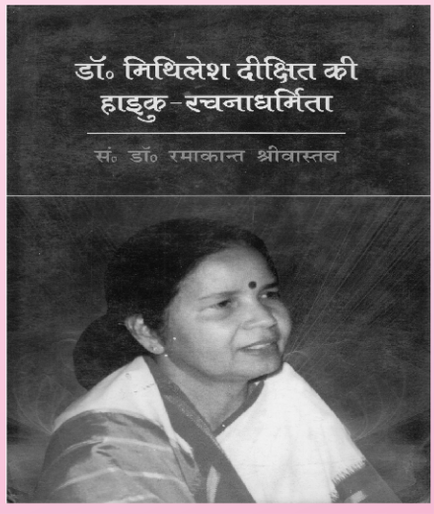
डॉ० मिथिलेश दीक्षित की
हाइकु-रचनाधर्मिता
सं० डॉ० रमाकान्त श्रीवास्तव

www.sambhavya.net

संभाव्य
प्रिंटिंग प्रेस, भागलपुर